अच्छी-अच्छी
बातें
शहीद मुर्तज़ा मुतह्हरी
अनुवादक
अब्बास असग़र शबरेज़

अच्छी-अच्छी बातें

शहीद मुर्तज़ा मुतह्हरी

अनुवादकः **अब्बास असग़र शबरेज़**
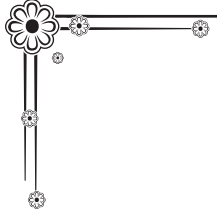
किताब : अच्छी-अच्छी बातें

राईटर : शहीद मुर्तज़ा मुतह्हरी

ट्रांस्लेटर : अब्बास असग़र शबरेज़

पहला प्रिन्ट : फ़रवरी 2016

तादाद : 2000

पब्लिशर : ताहा फ़ाउंडेशन, लखनऊ

प्रेस : पंचशील प्रेस, लालबाग़, लखनऊ

क़ीमत : 40/=
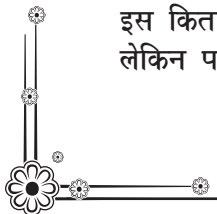
وَمَن يَتَّقِ اللَّهَ يَجعَل لَّه مَخرَجا

जो भी अल्लाह का तक़वा अपना लेता है अल्लाह उसके लिए निजात का रास्ता पैदा कर देता है। (सूरए तलाक़/2)

اَلَّذينَ اِن مَكَّنّاهُم فِى الاَرضِ

اَقامُوا الصَّلاةَ وَ آتَوُا الزَّكاةَ وامَروا بالمَعرُوف ونَهَوا عَنِ المُنكَر

जिन्हें हम ने ज़मीन पर ताक़त दी वह नमाज़ क़ायम करते हैं, ज़कात अदा करते हैं और अच्छाईयों का हुक्म देते हैं और बुराईयों से रोकते हैं। (सूरए हज़/41)

इमाम अली अ०:

आज इस दुनिया में तक़वा इंसान के लिए एक ढाल (Sheild) की तरह है और कल क़यामत में जन्नत की तरफ़ जाने का रास्ता है। (नहजुल बलाग़ा, ख़ुतबा/189)

contents

पहली बात

इस्लाम एक ऐसा दीन है जो इस लिहाज़ से दूसरे सारे मज़हबों से अलग है कि इस दीन ने हमें इस दुनिया में ज़िंदगी गुज़ारने के लिए पूरा एक सिस्टम दिया है और यह सिस्टम ऐसा सिस्टम जो इस दुनिया से लेकर मरने के बाद तक काम आता है। इसी सिस्टम एक हिस्सा तक़वा और अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर (अच्छाईयों की तरफ़ बुलाना और बुराईयों से रोकना) भी हैं। यह दोनों इस्लाम की इतनी बुनियादी और इतनी ख़ास बातें हैं कि क़ुरआन व हदीस में जगह-जगह इन दोनों के बारे में नसीहत की गई है। क़ुरआन ने जितना नमाज़-रोज़े के बारे में हुक्म दिया है उतना ही या उस से भी ज़्यादा तक़वा के बारे हुक्म दिया है। तक़वा एक ऐसा दीनी हुक्म है जो ईमान के बाद की चीज़ है कि अगर तक़वा को सही से न अपनाया जाए तो न हमारे ईमान के दर्जे ऊपर जा सकते हैं और न ईमान मज़बूत हो सकता है।

इसी तरह अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर भी है। यह तो ऐसा हुक्म है कि पिछली क़ौमों पर सिर्फ़ इसी लिए अज़ाब कर दिया गया था कि वह क़ौमें अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर नहीं करती थीं यानी उन क़ौमों के अच्छे लोग अपने दूसरे भाईयों को अच्छाईयों की तरफ़ नहीं बुलाते थे और न ही उन्हें बुराईयों से रोकते थे जबकि उन क़ौमों में अल्लाह तआला के बड़े-बड़े नेक बंदे और उसकी इबादत करने वाले भी होते थे लेकिन फिर भी अज़ाब आया और बहुत बार आया।
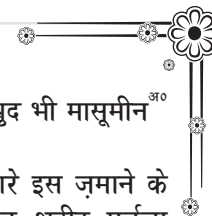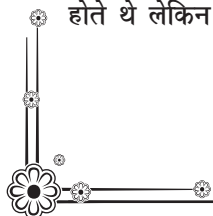
यह तो एक ऐसा दीनी हुक्म है जिसकी हम ख़ुद भी मासूमीन[अ०] की ज़ियारत पढ़ते वक़्त गवाही देते हैं।

जो किताब आपके हाथों में है इसमें हमारे इस ज़माने के एक बहुत बड़े आलिमे दीन और फ़िलॉस्फ़र शहीद मुर्तज़ा मुतह्हरी ने हमारी ज़िंदगी से जुड़े इन्हीं दो बहुत ख़ास सब्जेक्ट्स यानी तक़वा और अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर पर बात की है। इस किताब में शहीद मुतह्हरी ने यह साबित करने की कोशिश की है कि तक़वा और अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर हमारी रोज़ाना की इसी ज़िंदगी से जुड़े अल्लाह तआला के दो हुक्म हैं जिनसे न हमें भागना चाहिए और न डरना चाहिए क्योंकि इन पर अमल करना सिर्फ़ कुछ लोगों की ही ज़िम्मेदारी नहीं है बल्कि समाज के एक-एक आदमी की ज़िम्मेदारी है।

परेशानी की बात यह है कि हम ने दीन को सिर्फ़ कुछ ऐसी इबादतों में बांध दिया है जो हमें ज़रा आसान लगती हैं जबकि सही बात यह है कि अगर तक़वा और अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर पर अमल न किया जाए तो बाक़ी दूसरी इबादतों पर भी ठीक से अमल नहीं किया जा सकता और न ही उन में कोई जान पैदा होगी।

यह किताब शहीद मुतह्हरी सीरीज़ की पहली कड़ी है। अगर अल्लाह तआला ने तौफ़ीक़ दी तो इस सिलसिले की दूसरी किताबें भी इंशाअल्लाह जल्दी ही आपके सामने पेश की जाएंगी ताकि हम अपने पालने वाले से ज़्यादा से ज़्यादा क़रीब हो सकें।

यह किताब आपके हाथों में है। इसे पढ़ने के बाद जो कमियां आपको नज़र आएं वह हमें ज़रूर बताईए ताकि अगले एडिशन में उन्हें दूर किया जा सके।

ताहा फ़ाउंडेशन
लखनऊ
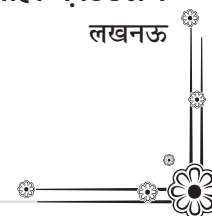
(1)

तक़्वा

तक़्वा का मतलब यह है कि दीन ने इंसान को इस दुनिया में जीने के लिए जो क़ानून बताए हैं वह उन्हें अपनाए और ऐसी हर चीज़ से दूर हो जाए जो दीन के हिसाब से गुनाह, बुराई या ग़लती है। गुनाहों से अपनी सेक्योरिटी, अपना बचाव करने और दूर रहने को ही तक़्वा कहते हैं।

यूँ तो हमारे समाज में तक़्वा एक ऐसी चीज़ है जिससे आमतौर पर लोग बहुत डरते हैं जैसे यह कोई बड़ी भयानक सी चीज़ हो जबकि ऐसा कुछ भी नहीं है। तक़्वा का सीधा सा मतलब यह है कि एक मुसलमान ऐसे हर काम से दूर रहे जिनसे दूर रहने के लिए हमारे पालने वाले ने हम से कहा है। ऐसे सारे काम या तो हराम हैं या मकरूह।

अगर इस तरह से देखें तो हम में से हर एक, कम या ज़्यादा, तक़्वा पर अमल करता ही करता है। अगर ऐसा है फिर इस से डरना कैसा ?

आम ज़बान में यूँ कहा जाए कि तक़्वा एक ऐसा इस्लामी सिस्टम है जिस पर चलकर ही हम एक अच्छे मुसलमान बन सकते हैं।

आइए! देखते हैं कि तक़्वा आख़िर है क्या और इस्लाम इस बारे में क्या कहता है...।

यह शब्द उन शब्दों में से है जो हमारे दीनी कल्चर में बहुत ज़्यादा इस्तेमाल होता है। क़ुरआन करीम में भी इस शब्द का इस्तेमाल बहुत ज़्यादा हुआ है। क़ुरआन में जितना ईमान, अमल, नमाज़, ज़कात या रोज़े वग़ैरा का शब्द इस्तेमाल हुआ है क़रीब-क़रीब उतना ही या उस से भी ज़्यादा तक़्वा (Piousness) शब्द इस्तेमाल हुआ है।

इसी तरह नहजुल बलाग़ा में भी जिन शब्दों को बहुत ज़्यादा इस्तेमाल किया गया है उन में से एक तक़्वा शब्द भी है। नहजुल बलाग़ा में ख़ुतब-ए-मुत्तक़ीन नाम का एक काफ़ी लम्बा ख़ुतबा है। यह ख़ुतबा इमाम अली[अ०] ने हम्माम बिन शुरैह की वजह से दिया था। हम्माम, मुत्तक़ियों (Pious men) के बारे में जानना चाहते थे। पहले तो इमाम ने मना किया लेकिन हम्माम नहीं माने तो इमाम ने इस बारे में उनको दो-चार बातें बता दीं और चुप हो गए। हम्माम फिर भी नहीं माने। जब इमाम अली[अ०] ने देखा कि हम्माम बिन शुरैह मानने वाले नहीं हैं तो इमाम[अ०] ने तफ़सील (विस्तार) से अपनी बात शुरू की और मुत्तक़ियों की सौ से ज़्यादा सिफ़तें (Qualities) बयान कीं। उलमा ने लिखा है कि अभी इमाम की बात ख़त्म भी नहीं हुई थी कि हम्माम से बर्दाश्त नहीं हुआ और वह एक चीख़ मार कर इस दुनिया से चले गए।

बहरहाल बात यह थी कि यह शब्द दीनी कल्चर में भी और हमारी आम ज़िंदगी में भी बहुत ज़्यादा इस्तेमाल होता है।
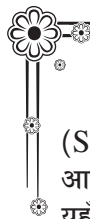
तक़्वा अरबी ज़बान का शब्द है जिसके मायनी हिफ़ाज़त (Security) के हैं। लेकिन हमारी ज़बान में इस शब्द को आमतौर पर इस मायनी में इस्तेमाल नहीं किया जाता है। हमारे यहाँ 'तक़्वा' या 'मुत्तक़ी' के मायनी परहेज़गारी (परहेज़ करना या बचना) या परहेज़गार (परहेज़ करने या बचने वाला) के लिए जाते हैं जैसे क़ुरआन की आयत ''हुदल लिल मुत्तक़ीन'' का मतलब यह निकाला जाता हैः ''यह परहेज़गारों के लिए हिदायत है।'' और यह तो हम सभी जानते हैं कि परहेज़गार यानी परहेज़ करने वाला यानी बचने वाला।

इसी तरह जहाँ क़ुरआन में हुक्म दिया गया है कि 'इत-त-क़ुल्लाह' या 'इत-त-क़ुन्नार' तो वहाँ इस से डरने के मायनी निकाले जाते हैं। 'इत-त-क़ुल्लाह' यानी अल्लाह से डरो या 'इत-त-क़ुन्नार' यानी जहन्नम की आग से डरो।

यूँ तो अभी तक किसी ने भी यह नहीं कहा है कि तक़्वा (Piousness) का मतलब परहेज़, डर या बचना है। वैसे आमतौर पर यही देखा गया है कि अगर कोई ख़ुद को किसी चीज़ से बचाता है तो ऐसा किसी न किसी डर की वजह से ही होता है। बस इसीलिए यह मान लिया गया है कि यह शब्द कहीं परहेज़ करने या बचने के मायनी में और कहीं डर के मायनी में आता है।

लेकिन हमारे पास यह कहने की भी कोई वजह नहीं है कि यह कहा जा सके कि इस शब्द को डर के मायनी में इस्तेमाल ही नहीं किया जा सकता और ऐसी भी कोई वजह नहीं है जिसकी वजह से कहा जाए कि यह शब्द डर के मायनी के लिए ही बनाया गया है। इस का मतलब दोनों बातें सही हो सकती हैं।

आख़िर ऐसी कौन सी वजह है कि हम यह कहें कि क़ुरआन में मौजूद 'इत-त-क़ुल्लाह' का मतलब ख़ुदा से डरो है या 'इत-त-क़ुन्नार' का मतलब आग से डरो है? बल्कि इस तरह के हुक्म का मतलब यह है कि अपने आपको जहन्नम की आग से बचाओ या ख़ुद को अल्लाह के अज़ाब से बचाओ। इसलिए तक़्वा शब्द का सही मतलब 'अपना बचाव करना' है यानी अपने ऊपर कंट्रोल करना। इस तरह मुत्तक़ी (Pious) का मतलब निकलकर आता हैः ''अपने आप को बचाने वाला।''

अल्लाह का डर

हो सकता है कि किसी के दिमाग़ में यह सवाल पैदा हो जाए कि भला अल्लाह से कैसा डर? क्या ख़ुदा भी कोई भयानक सी चीज़ है कि उससे डरा जाए? ख़ुदा तो एक ऐसी हस्ती है जिससे हर इन्सान को मोहब्बत करना चाहिए, फिर डर कैसा?

इसका जवाब यह है कि जी हाँ! बिल्कुल ऐसा ही है। ख़ुदा से डरने की कोई ज़रूरत नहीं है लेकिन जब हम यह कहते हैं कि ख़ुदा से डरो तो इसका मतलब दरअसल यह होता है कि ख़ुदा के इंसाफ़ भरे क़ानून से डरो। एक दुआ में हैः

> ऐ वह कि जिससे उसके करम की वजह से उम्मीद पैदा होती है और जिसके इंसाफ़ की वजह से उससे डरा जाता है।

अपनी जगह ख़ुद इंसाफ़ भी कोई डरने की चीज़ नहीं है। इंसान अगर इंसाफ़ से डरता है तो असल में वह अपने आप से ही डरता है कि कहीं न कहीं उसने कोई ग़लती की होगी या आगे चलकर किसी का हक़ छीनना चाहता होगा। इसीलिए अगर मोमिन के लिए कहा गया है कि मोमिन को उम्मीद भी होना चाहिए और डर भी, ख़ुश भी होना चाहिए और डरा हुआ भी तो इसका मतलब यही है कि उसे हर वक़्त अपने दिल और अपनी दिली चाहतों व ख़्वाहिशों से डरते रहना चाहिए कि कहीं यह ख़्वाहिशें उसकी अक़्ल व ईमान को डुबो न दें और ख़ुदा पर भरोसा करते हुए उससे उम्मीद भी लगाए रखना चाहिए कि वह हर घड़ी उसकी मदद करेगा।

इमाम सज्जाद[अ०] दुआए अबू हमज़ा सुमाली में फ़रमाते हैंः

> जब भी मैं अपनी ग़ल्तियों की तरफ़ देखता हूँ तो एक तरह का डर मेरे ऊपर छा जाता है और जब भी तेरे करम की तरफ़ देखता हूँ तो मेरे अंदर उम्मीद पैदा हो जाती है।

तक़्वा (Piousness) के मायनी और इसकी असलियत

तक़्वा के बारे में ऊपर जो कुछ कहा गया है उस से किसी हद तक तक़्वा के मायनी और इसकी असलियत को समझा जा

सकता है लेकिन हमारे लिए यह जानना भी ज़रूरी है कि दीनी व इस्लामी लिट्रेचर में यह शब्द किस तरह इस्तेमाल हुआ है ताकि हमारी समझ में अच्छी तरह से आ जाए कि तक़्वा आख़िर है क्या ?

अगर इंसान एक उसूली (Principle based) और सिस्टमेटिक ज़िंदगी बिताना चाहता है और कुछ उसूलों (Principles) पर चलना चाहता है, चाहे यह उसूल दीन से लिए गए हों या कहीं और से, तो उसे अपने लिए एक रास्ता ज़रूर चुनना होगा। दूसरे शब्दों में यूँ कहा जाए कि उसके कामों और उसकी सोच के लिए एक सिस्टम का होना ज़रूरी है। किस रास्ते, अक़ीदे या उसूल पर चलना है जब यह तय हो जाएगा तो फिर इंसान सिर्फ़ एक ही मक़सद (Cause) और एक ही मंज़िल (Target) की तरफ़ आगे बढ़ेगा। इसका दूसरा बड़ा फ़ाएदा यह भी होगा कि ऐसे सारे काम जो उसे तो अच्छे लगते होंगे लेकिन उसके उसूलों (Principles) से टकराते होंगे, वह उन कामों से भी अपने आप को ''बचाएगा''।

अगर इस तरह से देखा जाए तो तक़्वा अपने इस आम मायनी में ऐसे हर आदमी की ज़िंदगी में मिल जाएगा जो इंसान बनना चाहता है, अपनी अक़्ल व समझ पर चलते हुए ज़िंदगी बिताना चाहता है और पहले से तय अपने उसूलों पर चलना चाहता है, चाहे वह मुसलमान न भी हो।

अब अगर दीनी तक़्वा (Piousness) की बात की जाए तो इसका मतलब यह निकलेगा कि दीन ने इंसान को इस दुनिया में जीने के लिए जो उसूल (Principles) बताए हैं वह उन्हें अपनाए और ऐसी हर चीज़ से दूर हो जाए जो दीन के हिसाब से गुनाह, बुराई या ग़लती है।

गुनाहों से अपनी हिफ़ाज़त (Security), अपना बचाव और दूर रहना या दूसरे शब्दों में कहा जाए तो तक़्वा दो शक्लों में हमारे सामने आ सकता है।

या यूँ कहिए कि तक़्वा दो तरह का हो सकता हैः

एक वह तक़्वा जो कमज़ोरी है और दूसरा वह जो ताक़त है।

पहला तक़्वा यह है कि अगर इंसान ख़ुद को गुनाहों से बचाना चाहता है तो ज़रूरी है कि ऐसे कामों से बचे जो गुनाहों

की वजह बन जाते हैं और ऐसी जगहों से भी दूर रहे जहाँ गुनाह पनपते हैं। जैसे अगर किसी को अपनी सेहत का ध्यान हो तो वह ऐसी जगहों पर बिल्कुल नहीं जाएगा जहाँ बीमारी या बेक्टीरिया के पैदा होने का ख़तरा हो। मान लीजिए कि किसी जगह मलेरिया का इन्फ़ेक्शन फैला हुआ है तो ऐसा इंसान वहाँ से गुज़रता भी नहीं है या अगर किसी को कोई इन्फ़ेक्शन है या कोई छूत की बीमारी है तब भी इंसान उस से दूर ही रहता है।

दूसरी तरह का तक़्वा यह है कि इंसान अपनी रूह के अंदर एक ऐसी हालत व ताक़त पैदा कर ले जिससे उसकी रूह का एक तरह से अख़लाक़ी व रूहानी (Morally and Spritually) इंश्योरेंस हो जाए। जैसे अगर वह किसी ऐसी जगह पर पहुँच भी जाए जहाँ बहुत ज़्यादा गुनाह या गुनाह करने वाले हों तब भी उसकी रूहानी ताक़त उसे गुनाहों से बचा ले और वह गुनाहों से बच जाए। आज के ज़माने में बच्चों को लगने वाले टीके इसकी बेहतरीन मिसाल हैं। जिस बीमारी से बचने के लिए टीका लगाया जाता है वह बीमारी टीका लगने के बाद आमतौर पर नहीं होती है।

आज हमारे बीच आम लोगों में तक़्वा के जो मायनी पाए जाते हैं वह वही पहले वाले हैं। जब कहा जाता है कि वह आदमी मुत्तक़ी (Pious) है और तक़्वा (Piousness) पर अमल करता है तो इसका मतलब यही निकाला जाता है कि वह दूसरों से दूर सब से अलग-थलग रहता है और इस तरह गुनाहों से अपना बचाव करता है। यह वही तक़्वा है जिसके लिए हम ने कहा था कि कमज़ोरी वाला तक़्वा है।

शायद इस सोच के बन जाने की वजह यह हो कि पुराने ज़माने से ही हमें यही बताया गया है कि तक़्वा यानी परहेज़गारी या बचना और दूर रहना। धीरे धीरे गुनाहों से दूरी को ही समाज से दूरी के मायनी में भी समझा जाने लगा। आगे बढ़कर नौबत यहाँ तक पहुँच गई कि तक़्वा का मतलब लोग यही समझने लगे कि बस सब कुछ छोड़ दो और सारे समाज से कट कर एक कोने में दुबक कर बैठ जाओ। आम बोलचाल में भी जब यह शब्द बोला जाता है तो इस शब्द के साथ एक तरह की घुटन, खिंचाव और पीछे हटने जैसी हालत दिखाई देती है।

पहले भी कहा जा चुका है कि अगर इंसान एक समझदारी व इंसानियत भरी ज़िंदगी बिताना चाहता है तो ज़रूरी है कि वह

पहले से तय कुछ उसूलों (Principles) पर चले और इन पहले से तय उसूलों पर चलने के लिए ज़रूरी है कि वह उन कामों से दूर रहे जो ख़ुद उसे तो अच्छे लगते हैं लेकिन उसके मक़सद (Target) और उसकी इस ज़िंदगी से टकराते हैं लेकिन अगर वह ऐसा करना चाहता है तो इस के लिए यह बिल्कुल ज़रूरी नहीं है कि वह समाज और लोगों से ही दूर हो जाए। बेहतरीन रास्ता यही है कि इंसान अपने अंदर एक ऐसी रूहानी ताक़त पैदा कर ले कि समाज में रहते हुए भी वही ताक़त हर जगह उसे बचाती रहे।

कभी-कभी हमें अपने शायरी में भी ऐसा ही दिखाई देता है कि शायरों ने जो बातें हमें सिखाई हैं उन से भी तक़वा का वही पहला वाला यानी कमज़ोरी वाला मतलब निकल कर आता है। शायरी उठाकर देखिए तो जगह जगह मिलेगा कि एक फ़क़ीर था, आलिम था, अल्लाह वाला था और बड़ा नेक इंसान था। वह इतना नेक था कि उस ने सारी दुनिया को छोड़कर किसी पहाड़ी या सुनसान जगह को अपना बसेरा बना लिया था। जो मिल जाता था बस वही खा लेता था और उस ने अपनी पूरी ज़िंदगी इसी तरह गुज़ार दी थी।

जैसे मशहूर शायर शेख़ सादी ने कहा हैः

> मैंने एक मुत्तक़ी (Pious) और इबादत करने वाले को एक पहाड़ पर डेरा डाले हुआ देखा जो सारी दुनिया को छोड़कर यहाँ आकर बस गया था। मैंने उससे पूछा कि भाई! शहर में लोगों के बीच आकर क्यों नहीं रहते हो? उसने जवाब दिया कि अगर तुम लोगों के बीच में रहूँगा तो वहाँ की चमक-दमक मुझे भी अपनी तरफ़ खींच लेगी। इसलिए मैंने सोचा कि अच्छा यही है कि सब कुछ छोड़कर यहीं डेरा डाल लूँ।

इसी तरह एक और मशहूर शायर बाबा ताहिर भी कहते हैंः

> मुझे अपनी आँखों और अपने दिल दोनों से ही परेशानी है क्योंकि जो कुछ मेरी आँखें देखती हैं बस वही मेरे दिल को भी अच्छा लगने लगता है। इसलिए मैं एक ऐसे ख़ंजर की तलाश में हूँ जिससे अपनी आँखों को ही फोड़ दूँ। जब आँखें

> ही नहीं रहेंगी तो दिल भी परेशान नहीं करेगा।

ठीक है कि जिधर इंसान की आँखें जाती है दिल भी उधर ही चल देता है लेकिन इस परेशानी का क्या सिर्फ़ यही एक हल है कि इंसान अपनी आँखें ही फोड़ दे? या इस से अच्छा एक दूसरा रास्ता भी है और वह यह कि अपने दिल के अंदर एक ऐसी ताक़त पैदा कर ली जाए और उसे इतना मज़बूत बना लिया जाए कि आँखें उसे अपने पीछे-पीछे चलने पर मजबूर ही न कर सकें। अगर इस परेशानी का बस यही हल है कि अपने दिल को बचाने के लिए एक ख़ंजर लेकर आँखों को ही फोड़ दिया जाए तो फिर एक दूसरा खंजर कानों के लिए भी ढूँढना पड़ेगा क्योंकि ऐसा भी तो होता है कि दिल कान में पड़ी आवाज़ के पीछे भी चल पड़ता है और फिर इसी तरह बदन के दूसरे हिस्सों के लिए भी एक-एक खंजर तलाश करना पड़ेगा।

यह वही तक़वा है कि अपने दिल व रूह को मार दो और किसी कोने में दुबक जाओ ताकि गुनाह का मौक़ा ही हाथ न आए। इंसान का कमाल (Perfection) यह नहीं है कि वह समाज की ख़राबी की वजह से समाज से ही दूर हो जाए बल्कि कमाल यह है कि उसी समाज में रहे और फिर भी सारी बुराईयों व गुनाहों से बचा रहे।

अपने साथ ज़बरदस्ती

किताबों में लिखा मिलता है कि पुराने ज़माने में उलमा ज़्यादा बातें न करने और अपनी ज़बान को हराम या फ़ालतू बातों से बचाने के लिए अपने मुँह में कंकरियां रख लेते थे ताकि बात ही न कर सकें यानी अपने साथ एक तरह की ज़बरदस्ती किया करते थे। आज भी उन उलमा के इस काम को आमतौर पर तक़वा के एक अच्छे नमूने के तौर पर बताया जाता है जबकि गुनाहों से बचने और फिर गुनाहों को छोड़ने के लिए अपने साथ ज़बरदस्ती करना कोई कमाल नहीं है। फिर भी इस रास्ते से ही सही अगर हमें गुनाहों से दूर हो जाने की तौफ़ीक़ हासिल हो जाए तो बहरहाल हम गुनाहों से तो बच जाएंगे लेकिन इसके बावजूद हमारे अंदर पाई जाने वाली हमारी दिली ख़्वाहिशें (Worldly Desires) तो अभी भी वही

ज़हरीला सांप हैं जो पहले से भी था और किसी भी वक़्त मौक़ा मिलते ही डस लेगा। इस बीच हुआ सिर्फ़ यह है कि हम ने उसे ऐसा मौक़ा ही नहीं दिया कि वह हमें डंक मार सके। अगर मौक़ा दे दिया होता तो वह ज़रूर डंक मार देता। इंसान का कमाल यह है कि वह अपने आसपास गुनाह या गुनाह का मौक़ा होते हुए भी बिना किसी ज़ोर-ज़बरदस्ती के गुनाहों से बचा रहे। ज़ोर-ज़बरदस्ती के साथ गुनाहों से बचना अगर कमाल है भी तो यह सिर्फ़ अगली असली स्टेज के लिए पहली सीढ़ी जैसा है कि इस रास्ते पर चलते हुए हम आगे बढ़ जाएं और फिर अपने अंदर तक़वा (Piousness) की एक ऐसी ताक़त (Shield) पैदा कर लें कि जिसके बाद हम गुनाहों के बीच में रहते हुए भी गुनाहों से बच जाएं क्योंकि तक़वा की यह ताक़त बहरहाल एक लम्बी प्रेक्टिस के बाद ही हाथ आती है लेकिन सच्ची बात यही है कि तक़वा की असलियत वह नहीं है जो आमतौर पर लोग समझते हैं। तक़वा की असलियत यही है कि अपने अंदर एक ऐसी रूहानी (Spritual) और मुक़द्दस (पवित्र) ताक़त पैदा कर ली जाए कि फिर उसके बाद वही ताक़त हर जगह और हर कल्चर में इंसान को बचा ले। इसके लिए कोशिश और मेहनत करना पड़ती है, यह ताक़त आसानी से हाथ नहीं आती।

नहजुल बलाग़ा में तक़वा

दीनी किताबों ख़ासकर नहजुल बलाग़ा में जहाँ कहीं भी तक़वा के बारे में बात की गई है वहाँ तक़वा के वही ''रूह के अंदर एक ख़ास ताक़त'' वाले मुक़द्दस (पवित्र) मायनी लिए गए हैं जिसके बाद इंसान के अंदर पाया जाने वाला दिल और दिली चाहतें क़ाबू में आ जाती हैं।

नहजुल बलाग़ा के ख़ुतबा/112 में हज़रत अली[अ०] इस तरह फ़रमाते हैं:

> ख़ुदा का तक़वा ख़ुदा के दोस्तों को अपने अंदर ले लेता है और उन्हें उन कामों से बचा लेता है जो ख़ुदा ने हराम कर दिए हैं। उनके दिलों में ख़ुदा का इतना डर पैदा कर देता है कि वह रातों को जाग कर और दिनों को भूखे रहकर (रोज़ा रखकर) गुज़ार देते हैं।
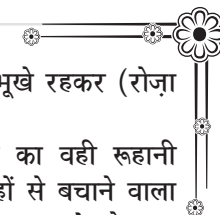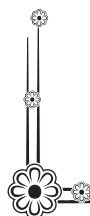
इस ख़ुतबे में साफ़-साफ़ तक़वा का वही रूहानी मतलब बताया गया है जो इंसान को गुनाहों से बचाने वाला और ख़ुदा के डर को तक़वा से पड़ने वाले असर के तौर पर पेश करने वाला है। यहीं से यह बात भी समझ में आ जाती है कि तक़वा का मतलब डरना नहीं है बल्कि डर तो तक़वा से पैदा होने वाला एक असर है जो इंसान के दिल में अपने आप उभर आता है जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि क़ुरआन की आयत 'इत-त-क़ुल्लाह' का मतलब यह नहीं है कि अल्लाह से डरो।

नहजुल बलाग़ा के ही ख़ुतबा/16 में इस तरह आया है:

> मैं अपनी कही बात का ज़िम्मेदार हूँ और अपनी बात के सही होने की गारंटी लेता हूँ। जिस किसी भी इंसान को पिछली इबरतों में आने वाला कल साफ़-साफ़ दिखने लगे, उसे तक़वा शक वाले कामों में अंधाधुंद कूदने से बचा लेता है।

इसके बाद इमाम अली[अ०] फ़रमाते हैं:

> जान लो कि गुनाह उन अड़यल घोड़ों की तरह हैं जिन पर उनके सवारों को सवार कर दिया गया हो और लगामें भी काट दी गई हों और वह ले जाकर उन्हें जहन्नम में फ़ाँद पड़ें। तक़वा उन सिधाई हुई सवारियों की तरह है जिन पर उन सवारों को सवार कर दिया गया हो और वह भी इस तरह कि लगामें उन सवारों के हाथों में दे दी गई हों और वह उन्हें (आराम से) ले जाकर जन्नत में उतार दें।

यहाँ भी साफ़ साफ़ तक़वा (Piousness) का वही मतलब है कि अपने अंदर एक ऐसी रूहानी ताक़त (Spritual Shield) पैदा की जाए जिसके बाद अपने दिल व दिली चाहतों पर पूरी तरह कंट्रोल पा लिया जाए। साथ ही यहाँ एक और दूसरी बड़ी सच्चाई भी बयान हुई है कि अपनी दिली चाहतों का क़ैदी बन जाना और दुनियादारी में ही डूब जाना एक तरह की कमज़ोरी है। इंसान इस हालत में उस आदमी की तरह होता है जो एक ऐसे अड़यल घोड़े पर सवार हो जाए
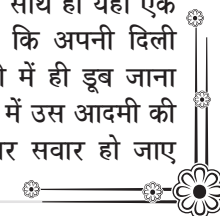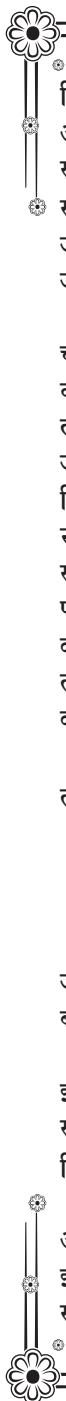
जिसके ऊपर उसका कोई कंट्रोल न हो। जबकि तक़्वा और अपनी दिली चाहतों को क़ाबू में करने का फ़ाएदा यह है कि इस से इंसान का इरादा मज़बूत हो जाता है और उसकी अपनी एक रूहानी शख़्सियत (Spritual Personality) भी बन जाती है जैसे एक माहिर घुड़ सवार किसी सिधाए हुए घोड़े पर सवार हो जाए और फिर जिधर चाहे उसे ले जाए।

इसके उलट वह आदमी भी है जो अपनी दिली चाहतों, दुनियादारी, लालच, हवस और शोहरत या दौलत वग़ैरा के अड़यल घोड़े पर सवार होकर इन्हीं चीज़ों के पीछे दौड़ लगा देता है। ऐसे आदमी का अपने ऊपर कोई कंट्रोल नहीं रह जाता है। उसकी लगाम इन्हीं चीज़ों के हाथों में चली जाती है जिसके बाद वह हर जगह और हर वक़्त इन्हीं चीज़ों में लगा रहता है। अब इसके बाद अक़्ल, समझदारी और हालात को समझने की कोई गुंजाईश बाक़ी नहीं रह जाती लेकिन जिसके पास तक़्वा जैसी ताक़त होती है और जो अपने दिल को अपने कंट्रोल में रखने की पॉवर रखता है उसका अपने ऊपर पूरी तरह कंट्रोल होता है। ऐसा आदमी आसानी के साथ अपने दिल को जिधर चाहता है मोड़ लेता है।

नहजुल बलाग़ा के ख़ुतबा/189 में इमाम अली[अ०] ने तक़्वा के बारे में इस तरह बात की हैः

> आज इस दुनिया में तक़्वा इंसान के लिए एक ढाल (Sheild) की तरह है और कल क़यामत में जन्नत की तरफ़ जाने का रास्ता है।

इस तरह की मिसालें नहजुल बलाग़ा में बहुत ज़्यादा हैं जैसे ख़ुतबा/100 में तक़्वा को एक ऊँचा व मज़बूत क़िला बताया गया है।

ऊपर जो कुछ कहा गया वह सिर्फ़ नमूने के लिए था ताकि इन मिसालों को सामने रखते हुए तक़्वा के इस्लामी मायनी समझे जा सकें और यह भी जाना जा सके कि वह कौन लोग हैं जिन्हें मुत्तक़ी यानी तक़्वा वाला (Pious) कहा जाता है।

अब तक की बात का निचौड़ यह है कि तक़्वा इंसान के अंदर पैदा होने वाली एक ऐसी हालत का नाम है जिसके बाद इंसान के अंदर गुनाहों के हमलों के मुक़ाबले में एक मज़बूत रूहानी डिफ़ेंसिव सिस्टम पैदा हो जाता है जो उसे रूहानी तौर

पर एक ज़बरदस्त ताक़त दे देता है।

तक़्वा और इंसान की आज़ादी

पहले भी कहा जा चुका है कि अगर इंसान जानवरों जैसी ज़िंदगी से बाहर निकल कर सही मायनी में इंसानी ज़िंदगी बिताना चाहता है तो ज़रूरी है कि वह कुछ तय उसूलों (Principles) के तहत अपनी ज़िंदगी की गाड़ी को आगे बढ़ाए। इन उसूलों पर चलने के लिए ज़रूरी है कि वह इन्हीं उसूलों के अंदर रहकर आगे बढ़े और इन से बाहर न निकले। जब भी उसकी दिली चाहतें उसे इन उसूलों की सीमाओं को फंलांगने पर मजबूर करना चाहें तो वह फ़ौरन पूरी ताक़त से उन चाहतों को ठुकरा दे और अपने आप को बचा ले।

इस अपने आप को बचा लेने और इन चीज़ों को ठुकरा देने का नाम ही तक़्वा है।

अब किसी के दिमाग़ में यह बात न पैदा हो जाए कि तक़्वा तो नमाज-रोज़े की तरह सिर्फ़ एक दीनी चीज़ है। नहीं! तक़्वा सिर्फ़ दीन से जुड़ी किसी चीज़ का नाम नहीं है बल्कि यह तो हर इंसान की इंसानियत से जुड़ी एक चीज़ है। अगर इंसान जानवरों जैसी और जंगली ज़िंदगी से बाहर निकलना चाहता है तो उसे तक़्वा को अपनाना ही पड़ेगा। अगर कोई फ़र्क़ है तो सिर्फ़ यह कि दीनी तक़्वा में एक तरह की पाकीज़गी और मुक़द्दस (पवित्र) होना भी पाया जाता है। असल में सिर्फ़ दीन ही वह चीज़ है जिस पर तक़्वा की एक मज़बूत बुनियाद (Foundation) रखी जा सकती है। अल्लाह पर ईमान के अलावा और कोई चीज़ ऐसी नहीं है जिस पर तक़्वा की मज़बूत बुनियाद रखी जा सके। तभी तो सूरए तौबा/109 में हैः

> जिसने अपनी बुनियाद अल्लाह के तक़्वा और उसकी मर्ज़ी पर रखी हो वह बेहतर है या जिसने अपनी बुनियाद उस गिरते हुए कगारे पर रखी हो जो सारी इमारत को लेकर जहन्नम में गिर जाए ?

बहरहाल तक़्वा, मज़हबी तक़्वा (Religious Piousness) से भी बढ़कर एक और बड़ी चीज़ है जो आम

मायनी में हर इंसान के अंदर पाया जा सकता है जिसकी वजह से आम इंसान अपने आप बुराईयों व ग़ल्तियों से अपना बचाव कर सकता है।

अब इन सारी बातों, ख़ासकर मासूमीन[अ०] की ज़बान से तक़वा के बारे में ढाल, क़िला व चारदीवारी जैसे शब्दों को सुनने के बाद हो सकता है कि आज़ादी के नाम पर झूमने वाले और हर तरह की पाबन्दियों से भागने वाले लोग तक़वा को भी अपनी आज़ादी का दुश्मन और अपने पैरों में एक तरह की ज़ंजीर समझने लगें।

पाबन्दी या सेक्योरिटी

सच फिर भी यही है कि तक़वा पाबन्दियों का नाम नहीं है बल्कि तक़वा तो एक तरह से अपनी सेक्योरिटी है। पाबन्दी और सेक्योरिटी में बहुत गहरा फ़र्क़ पाया जाता है। अगर हम इसका नाम पाबन्दी रख भी लें तो यह एक ऐसी पाबन्दी है जो हर तरह से हमारा बचाव करती है और हमें सेक्योरिटी देती है।

आईए! इस मिसाल पर ग़ौर करते हैः

हम में से हर आदमी अपने लिए घर बनाता है। फिर उस घर में कमरे और उन कमरों में दरवाज़े लगाता है। साथ ही अपने घर के चारों तरफ़ दीवार भी बनाता है। हम यह काम क्यों करते हैं? हम ऐसा इसलिए करते हैं ताकि ठंडक के मौसम में सर्दी से और गर्मी के मौसम में गर्मी से ख़ुद को बचा सकें। ऐसा हम इसलिए भी करते हैं ताकि अपने घर के सामान को दूसरों से बचा सकें और अपने ही कंट्रोल में रखें। अगर देखा जाए तो हम अपने ही हाथों से अपनी ज़िंदगी और अपने घर पर पाबन्दी लगा लेते हैं और अपने घर की चारदीवारी में ख़ुद को क़ैद कर लेते हैं। अब अपने इस काम का हम क्या नाम रखेंगे? क्या घर और घर की चारदीवारी हमारे लिए किसी तरह की पाबन्दी है? इस से हमारी आज़ादी ख़त्म होती है या इस काम से हमें सेक्योरिटी मिलती है? इसी तरह कपड़े भी हैं। जूते भी हैं। इंसान अपने पैरों में जूते, सर पर कैप और बदन पर तरह-तरह के कपड़े लादता है। क्यों? क्योंकि इन्हीं चीज़ों की वजह से तो वह अपनी साफ़-सफ़ाई का ध्यान रख पाता है और सर्दी-गर्मी से बच पाता है। इसे हम क्या कहेंगे? क्या यह

भी पाबन्दी है? क्या यह भी क़ैद है? क्या कोई है जो यह कह सके कि अफ़सोस! मेरे पैर जूतों में, सर टोपी में और मेरा बदन कपड़ों में क़ैद हो गया है? क्या हम में से कोई इस जेल से आज़ाद होना चाहेगा? क्या कोई कह सकता है कि घर और कपड़े तो एक पाबन्दी और हमारी आज़ादी के दुश्मन हैं?

तक़वा भी हमारी रूह के लिए हमारे घर और हमारे कपड़ों ही जैसा है। मज़े की बात तो यह है कि ख़ुद क़ुरआन करीम ने भी तक़वा को लिबास (कपड़े) ही बताया है। सूरए आराफ़ की आयत/26 में हैः

तक़वा का लिबास सब से बेहतर है।

किसी भी चीज़ को हम सिर्फ़ उसी वक़्त पाबन्दी या क़ैद कह सकते हैं जब वह हमें हमारे कमाल (Perfection) और हमारे मक़सद (Target) से दूर कर रही हो लेकिन अगर कोई चीज़ हमें आने वाले ख़तरों से बचा रही हो तो यह कहीं से कहीं तक पाबन्दी या क़ैद नहीं है बल्कि यह तो साफ़-साफ़ हमारी सेक्योरिटी है। तक़वा यही काम तो करता है। इसके अलावा तक़वा का और कौन सा काम है?

हज़रत अली[अ०] इस बारे में फ़रमाते हैंः

> अपने तक़वा को बचाओ और फिर इसी तक़वा के ज़रिए ख़ुद को भी बचाओ।[1]

हज़रत अली[अ०] ने तो इस से भी आगे बढ़कर बात की है कि उन्होंने तक़वा को पाबन्दी मानने के बजाए इंसान की आज़ादी का एक बहुत बड़ा सोर्स भी बताया है। नहजुल बलाग़ा के ख़ुतबा/228 में हैः

> बेशक अल्लाह का डर हिदायत (Guidance) की चाबी और क़यामत में काम आने वाली दौलत है। यह चाहतों की हर तरह की ग़ुलामी और हर तरह की बर्बादी से बचने का रास्ता है। इसके ज़रिए इंसान अपने मक़सद (Target) तक पहुँच जाता है तमन्नाओं को पा लेता है।

तक़वा सब से पहले अख़लाक़ी व रूहानी (Moral & Spritual) लिहाज़ से इंसान को आज़ादी देता है और उसे उसकी चाहतों और दुनिया की हवस से आज़ाद कर देता है, उसकी गर्दन में पड़ी लालच, हसद, ग़ुस्से, घुटन और
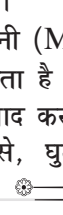
तरह-तरह की मानसिक उलझनों की ज़ंजीरों को काट देता है। इतना ही नहीं बल्कि आगे बढ़कर यही तक़वा समाजी ज़िंदगी को भी आज़ादी का मैसेज सुनाता है। समाजी मुश्किलों की जड़ समाज में रहने वाले लोगों की रूहानी मुश्किलें ही होती हैं। अगर कोई दौलत या शोहरत का ग़ुलाम है तो वह समाजी तौर पर एक आज़ादी भरी ज़िंदगी गुज़ार ही नहीं सकता। इसलिए सही बात यही है कि तक़वा इंसान को हर तरह की आज़ादी की ख़ुशख़बरी सुनाता है। इस तरह तक़वा न सिर्फ़ यह कि पाबन्दी नहीं है बल्कि यह तो आज़ादी ही आज़ादी है।

तक़वा एक क़िला है

तक़वा के बारे में ऊपर कहा गया कि यह एक क़िला है, ढाल है, सेक्योरिटी देने वाला है, बचाने वाला है और एक डिफ़ेंसिव सिस्टम है। अब यह सब जानने के बाद यह भी हो सकता है कि किसी के दिमाग़ में यह बात पैदा हो जाए कि अगर ऐसा है तो फिर तो घबराने की कोई बात ही नहीं है क्योंकि जहाँ भी ग़लती या गुनाह का ख़तरा होगा वहाँ तक़वा आकर हमें बचा लेगा।

हो सकता है कि यह सोच कुछ लोगों को गहरी नींद सुला दे जिसके बाद जागना बहुत मुश्किल हो जाएगा। सच यह है कि तक़वा जितने भी ऊँचे दर्जे का हो हर जगह और हर कल्चर में ख़ुद इसके लिए भी कुछ न कुछ ख़तरे पाए जाते हैं। दूसरे शब्दों में यूँ कहा जाए कि अगर इंसान अपने तक़वा के सेक्योरिटी सिस्टम के तहत ज़िंदगी गुज़ार रहा है तो उस इंसान की यह भी ज़िम्मेदारी है कि वह इस सेक्योरिटी सिस्टम को ख़राब होने से भी बचाए। अब कोई यह न कहे कि यह क्या बात हुई कि तक़वा हमें बचाए और हम तक़वा को बचाएं ?

अगर कोई चीज़ हमें बचा रही है या हमें सेक्योरिटी दे रही है और अगर हमें भी उसका ध्यान रखना पड़े तो इस में आख़िर कौन सी परेशानी की बात है ?

हमारे कपड़े सर्दी-गर्मी से हमें बचाते हैं, क्या हमें भी अपने कपड़ों का ध्यान नहीं रखना चाहिए कि कहीं चोर चुराकर न ले जाएं या कहीं किसी चीज़ से फट न जाएं।

हज़रत अली[अ०] ने एक जगह एक साथ इन दोनों बातों का

जवाब दिया हैः

> तक़वा को बचाओ और फिर उसके ज़रिए ख़ुद अपने आपको भी बचाओ।[2]

अब अगर कोई सवाल कर ले कि तक़वा हमें बचाता है या हम तक़वा को बचाते हैं ? इसका सीधा सा जवाब यह होगा कि दोनों ही बातें सही हैं, बिल्कुल उसी तरह जैसे अगर कोई कहे कि क्या ख़ुदा से क़रीब होने के लिए हमें तक़वा की ज़रूरत है या तक़वा हासिल करने के लिए हमें ख़ुदा से तौफ़ीक़ मिलने की दुआ करने की ज़रूरत है ? इसका जवाब भी यही है कि दोनों बातें अपनी-अपनी जगह सही हैं क्योंकि तक़वा के ज़रिए ही ख़ुदा से क़रीब हुआ जा सकता है और उधर से ख़ुदा ही है जो हमारी मदद कर सकता है कि हमारे अंदर ज़्यादा से ज़्यादा तक़वा पैदा हो।

हज़रत अली[अ०] एक दूसरी जगह फ़रमाते हैंः

> मैं तुम्हें अल्लाह के तक़वे की नसीहत करता हूँ। तक़वा तुम्हारे ऊपर अल्लाह का हक़ है। इसी से अल्लाह के ऊपर तुम्हारा हक़ भी साबित हो जाता है कि तक़वा हासिल करने के लिए अल्लाह से मदद मांगो और फिर ख़ुदा तक पहुँचने के लिए इसी तक़वे का सहारा लो।

बहरहाल हमें उन ख़तरों को समझना और जानना चाहिए जिन से तक़वा की बुनियादें (Foundations) हिल जाती हैं। ख़ुद दीन ही ने हमें बताया है कि तक़वा हमें बहुत से गुनाहों से बचा लेता है लेकिन कुछ गुनाह ऐसे भी हैं जिनमें बहुत ज़्यादा कशिश (Attraction) होती है। ऐसे गुनाहों से बचने के लिए हुक्म दिया गया है कि सिरे से ऐसे गुनाहों के आसपास ही मत भटको। यानी दीन ने ऐसे गुनाहों का दरवाज़ा ही बन्द कर दिया है।

जैसे दीन ने हम से नहीं कहा है कि चोरी करने, शराब पीने या क़त्ल करने वाली चीज़ों के साथ अकेले में रहना हराम है। यानी अगर कोई इंसान किसी ऐसी जगह पर अकेले में रहना चाहता हो जहाँ शराब पीने का पूरा-पूरा मौक़ा हो और कोई रोक-टोक भी न हो तब भी ऐसी जगह पर रहना या ठहरना हराम नहीं है, अगर उसके पास अल्लाह का तक़वा है

तो वही उसे इस काम से बचा लेगा लेकिन किसी नामहरम के साथ अकेले में ठहरने वाले मामले में ऐसा नहीं है क्योंकि इस मामले में इंसान की तड़प व ख़्वाहिश इतनी तेज़ हो जाती है और इतनी उभर जाती है कि यहाँ तक़्वा वाली गारंटी को उठाकर हुक्म दिया गया है कि किसी नामहरम के साथ अकेले में ठहरना हराम है। यह एक इतना बड़ा ख़तरा है कि यह तक़्वा की किसी भी मज़बूत से मज़बूत हिफ़ाज़ती दीवार (Security System) को तोड़कर उसके अंदर घुस सकता है और अपनी जीत का झंडा गाड़ सकता है।

तक़्वा की अहमियत (महत्व) और इसका असर

तक़्वा का क़यामत में जो कुछ असर होगा वह तो अपनी जगह है, ख़ुद हमारी इस दुनिया में भी इसका बहुत ज़्यादा महत्व और बहुत गहरा असर है।

इमाम अली[अ०] ने दूसरे किसी भी मासूम[अ०] से ज़्यादा तक़्वा पर ज़ोर दिया है और जगह-जगह तक़्वा को अपनाने की नसीहत की है। इमाम ने तक़्वा के बहुत से फ़ाएदे बताए हैं।

इमाम अली[अ०] कहते हैं:

> तक़्वा हर तरह की ग़ुलामी से आज़ादी और हर तरह की नाकामी से बचने का नाम है।

एक दूसरी जगह इमाम इस तरह फ़रमाते हैं:

> तक़्वा तुम्हारे दिल की बीमारियों की दवा और तुम्हारे बदन के मर्ज़ का इलाज है, तुम्हारे सीनों की ख़राबियों को सही करने वाला और तुम्हारे दिल को पाक करने वाला है।[3]

हज़रत अली[अ०] ने इंसान की सारी परेशानियों और मुश्किलों को एक जगह जमा कर दिया है और फिर उन सभी का हल सिर्फ़ एक चीज़ को बताया है और वह है तक़्वा।

सच्चाई यह है कि अगर हम तक़्वा से सिर्फ़ निगेटिव मतलब निकालने के बजाए इसे उस तरह से समझें जिस तरह हज़रत अली[अ०] हमें समझाना चाहते हैं तो फिर हमारी समझ में अपने आप आ जाएगा कि तक़्वा ही इंसान व इंसानियत की

बुनियाद (Foundation) है। चाहे इंसान की अपनी निजी ज़िंदगी हो या समाजी ज़िंदगी, तक़्वा अगर नहीं होगा तो ज़िंदगी की बुनियादें हिल जाएंगी।

किसी भी चीज़ की अहमियत (महत्व) सिर्फ़ उस वक़्त सामने आ सकता है जब हमारी समझ में यह बात आ जाए कि कोई दूसरी चीज़ उसकी जगह ले सकती है या नहीं? यहीं से तक़्वा की असलियत और अहमियत भी समझ में आ जाती है कि तक़्वा हमारी ज़िंदगी की एक ऐसी सच्चाई का नाम है जिसकी जगह दूसरी कोई चीज़ नहीं ले सकती, न माल, न दौलत, न ताक़त, न क़ानून, न हुकूमत और न ही कोई और दूसरी चीज़।

आज हमारे इस ज़माने में हर तरफ़ नए-नए क़ानून बनाने की एक होड़ सी लगी हुई है, यह क़ानून बना लो वह क़ानून बना लो, ऐसा कर लो वैसा कर लो, आए दिन क़ानूनों में बदलाव भी किया जाता है और उन्हें पहले से ज़्यादा सख़्त भी बनाया जाता है लेकिन इस सब के बाद भी परेशानियाँ अपनी जगह वैसी ही हैं जैसी पहले थीं। वैसे इस बात में भी कोई शक नहीं है कि ख़ुद क़ानून की अपनी जगह एक अहमियत है और क़ानूनों पर चलना हमारी रोज़ाना की ज़िंदगी का एक अटूट हिस्सा है। अल्लाह ने इंसान के लिए जो भी क़ानून बनाए हैं उन से हटकर भी इंसान को अपने बनाए क़ानूनों की ज़रूरत होती है लेकिन सवाल यह है कि क्या सिर्फ़ इंसान के बनाए क़ानूनों के ज़रिए समाज को ठीक किया और रखा जा सकता है? क़ानून का काम तो सिर्फ़ इतना होता है कि वह हर चीज़ की एक सीमा तय कर देता है, अब ख़ुद इंसानों के अंदर कोई ऐसी ताक़त होना चाहिए जो उन्हें इन सीमाओं के अंदर रख सके और लोग क़ानूनों का एहतेराम व इज़्ज़त (Respect) करते हुए उन पर चलें। इस ताक़त ही का नाम तो तक़्वा है।

कहा जाता है कि समाज के हर आदमी को क़ानून की इज़्ज़त करना चाहिए लेकिन जब तक तक़्वा जैसी ताक़त की इज़्ज़त नहीं होगी तब तक क़ानून की इज़्ज़त की उम्मीद भी नहीं रखना चाहिए।

आइए! अब इन मिसालों पर ध्यान देते हैं:

जैसा कि हम सभी जानते हैं कि आज हमारे समाज में बहुत सी मुश्किलें दिखाई पड़ती हैं जिनके लिए न्युज़ पेपर्स में
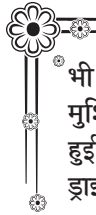
भी लोगों से कहा जाता है कि अपनी-अपनी राये दें कि इन मुश्किलों को कैसे हल किया जाए। इन में से एक मुश्किल बढ़ती हुई तलाक़ है, इलेक्शन का सही ढंग से न होना है या ग़लत ड्राइविंग का मसला है।

यह तो तय बात है कि इन परेशानियों के पीछे कुछ समाजी फ़ैक्टर्स पाए जाते हैं। यह भी तय है कि इन बढ़ती हुई तलाक़ों की सब से बड़ी वजह वही तक़वा का ख़त्म हो जाना है। अगर हमारे बीच से तक़वा कम न हो गया होता और मर्द व औरतें दोनों इतने बे लगाम न हो गए होते तो तलाक़ों की तादाद इतनी न बढ़ गई होती। पुराने ज़माने में घरों व फ़ैमिली के अंदर मुश्किलें आज के ज़माने से कहीं ज़्यादा होती थीं लेकिन ईमान व तक़वा की वजह से बहुत सी मुश्किलें अपने आप हल हो जाया करती थीं। आज हम ने अपनी यह ताक़त कहीं खो दी है और इसीलिए आज हमारी ज़ाहिरी ज़िंदगी तो बहुत अच्छी व राहत भरी हो गई है लेकिन साथ ही साथ हमारी मुश्किलें भी बढ़ गई हैं। अब हम नया क़ानून बनाकर, पिछले क़ानून को बदल कर, कोर्ट के ज़रिए या किसी भी तरह की ज़ोर-जबरदस्ती से तलाक़ की तादाद में कमी करना चाहते हैं लेकिन ऐसा होने वाला नहीं है।

इलेक्शन को ही ले लीजिए। कुछ लोगों का ज़ोर सिर्फ़ इसी पर होता है कि इलेक्शन में ख़राबियाँ इसलिए हो रही हैं क्योंकि इलेक्शन वाले क़ानून एक ज़माने पहले बनाए गए थे जो आज के इस दौर में कामयाब नहीं हो पा रहे हैं। हम ने माना कि क़ानून में कमियां हैं लकिन सवाल यह है कि क्या यह मुश्किलें इसलिए हैं कि लोग क़ानून पर अमल कर रहे हैं और गड़बड़ियां हो रही हैं या यह सब ख़राबियां इसलिए हैं क्योंकि लोग क़ानून पर अमल करना ही नहीं चाहते ? जिसकी वजह से लोग अपनी सीमा से बाहर निकल कर दूसरों का हक़ छीनने लगते हैं। जितने भी क़ानून बन जाएं मसला उस वक़्त तक हल नहीं होगा जब तक कि लोगों के अंदर तक़वा व ईमान न पैदा हो जाए।

इसी तरह ड्राइविंग का मसला भी है। ग़लत तरीक़े से ओवर टेक करना, तेज़ स्पीड से गाड़ी चलाना, कहीं भी अपनी गाड़ी पार्क कर देना, ग़लत-सलत कहीं से भी मोड़ देना वग़ैरा और इस तरह की सैकड़ों मुश्किलें हैं। यहाँ भी सवाल यही है कि यह मुश्किलें ट्रेफ़िक से जुड़े क़ानूनों की कमी की वजह से हैं
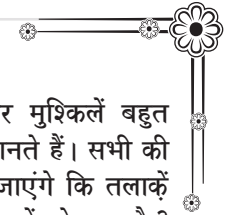
या इसकी वजह कुछ और है ?

आज हमारे बीच में समाजी सतह पर मुश्किलें बहुत ज़्यादा हैं जिनके बारे में आमतौर पर सभी जानते हैं। सभी की ज़बानों पर आज इस तरह के सवाल मिल जाएंगे कि तलाक़ें ज़्यादा क्यों हो रही है ? औरतों पर ज़ुल्म क्यों हो रहा है ? क़त्ल, चोरी, मारपीट और लूट-खसूट के मामले क्यों बढ़ते जा रहे हैं ? करप्शन इतना क्यों फैलता जा रहा है ? क्यों शराब, नशा, जुआ और लड़कियों की इज़्ज़त से खेला जा रहा है ?

असली बात यह है कि इन सारी बुराईयों की जड़ ईमान व तक़वा की कमी है।

सब से अजीब बात यह है कि बहुत से लोग हर वक़्त इस तरह की मुश्किलों के बारे में सवाल उठाते रहते हैं, हर स्टेज या प्लेटफ़ार्म पर बात करते हैं और जहाँ मौक़ा मिलता है वहाँ इस बारे में लिखते भी हैं लकिन ख़ुद क्योंकि तक़वा पर उनका ईमान नहीं होता इसलिए तरह-तरह के बहानों से लोगों के ज़ेहनों को दूसरी तरफ़ मोड़ कर उन्हें अख़लाक़ी बुराईयों (Moral Diseases) में ढकेल कर उन के तक़वे की बुनियादों को भी हिला देते हैं।

अब अगर किसी के पास अल्लाह पर ईमान और तक़वा न हो तो वह तो बड़ी आसानी से कह सकता है कि मैं भला चोरी क्यों न करूँ ? बेईमानी क्यों न करूँ ? ज़ुल्म क्यों न करूँ ? ऐसा क्यों न करूँ ? वैसा क्यों न करूँ ? फिर यह सिलसिला ख़त्म होने वाला नहीं है। जैसा कि आज हमारे यहाँ हो ही रहा है।

तक़वा और शिफ़ा

हज़रत अली[अ०] ने तक़वा के बारे में कहा हैः

तक़वा तुम्हारी जिस्मानी बीमारियों की दवा है।

हो सकता है कि किसी के दिमाग़ में सवाल पैदा हो जाए कि तक़वा तो एक रूहानी (Spritual) चीज़ है, इस से भला जिस्मानी बीमारियों का इलाज कैसे हो सकता है ? इसका जवाब यह है कि ठीक है कि तक़वा कोई टेबलेट या इंजेक्शन नहीं है लेकिन अगर तक़वा न हो तो हास्पिटल तो होगा लेकिन वहां हमदर्दी नाम की कोई चीज़ नहीं होगी, डाक्टर तो होगा लेकिन उसमें इंसानियत नाम की कोई चीज़ नहीं होगी, नर्सें तो होंगी
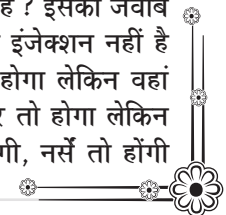
लेकिन उन में ख़िदमत का जज़्बा नहीं होगा, सब कुछ होगा लेकिन जो होना चाहिए वही नहीं होगा। अगर तक़्वा न हो तो आदमी ख़ुद अपने बदन और अपनी सेहत का भी हक़ अदा नहीं कर सकता। जिस आदमी के पास तक़्वा होता है वह अपनी ज़िंदगी, अपनी आमदनी और अपने आप से राज़ी रहता है जिसकी वजह से उसकी रूह और उसका दिल भी सुकून से रहता है। अब उसके अंदर पैसे और दौलत की हवस नहीं होती। अब उसे रात-दिन यह फ़िक्र नहीं होती कि किससे छीनूँ, किस से झपटूँ, किस से खींचूँ और किस को लूटूँ। जब उसे यह सारी फ़िक्रें होती ही नहीं तो उसे स्ट्रेस, दिमाग़ी उलझनें या डिप्रेशन जैसी परेशानियाँ भी नहीं होतीं। हवस, लालच, ग़ुस्सा और दुश्मनी जैसी बीमारियाँ उसे कमज़ोर नहीं करतीं। जब यह सब होता ही नहीं है तो उसकी उम्र भी लम्बी हो जाती है। आगे बढ़कर तन-बदन और रूह की यही सलामती पूरे समाज को ठीक कर देती है। हमें किसी न किसी तरह यह मानना ही होगा कि सब कुछ तक़्वा से ही हुआ जुड़ा है।

तक़्वा के दो बड़े फ़ाएदे

(1) बसीरत (समझ) व हिकमत (Wisdom) का पैदा होना
(2) मुश्किलों का हल होना और कामों का आसान होना

तक़्वा से बसीरत (समझ) व हिकमत (Wisdom) आती है

सूरए अनफ़ाल की आयत/29 में अल्लाह फ़रमाता हैः

> अगर तुम अल्लाह का तक़्वा अपना लो तो अल्लाह तुम्हारे अंदर फ़ुरक़ान (अच्छे-बुरे की पहचान) पैदा कर देगा।

सिर्फ़ यही एक आयत यह दावा नहीं कर रही है बल्कि पूरा इस्लामी सिस्टम इसी बुनियाद पर तैयार किया गया है। साथ ही इस आयत के अलावा दूसरी आयतें भी इसी बात की तरफ़ इशारा कर रही हैं। इतना ही नहीं बल्कि रसूले इस्लाम[स०]

और दूसरे मासूमीन[अ०] ने भी इस बारे में काफ़ी कुछ कहा है।

क़ुरआन करीम के सब से लम्बे सूरे की सब से लम्बी आयत यानी सूरए बक़रा/282 में अल्लाह फ़रमाता हैः

> अल्लाह का तक़्वा अपना लो, अल्लाह तुम्हें इल्म दे देगा।

उलमा का कहना है कि इन दो बातों का एक साथ आना इस बात का सुबूत है कि तक़्वा की वजह से अल्लाह मुत्तक़ी (Pious) को अपना ख़ास इल्म दे देता है।

रसूले इस्लाम[स०] ने फ़रमाया हैः

> अपनी दिली ख़्वाहिशों (Worldly Desires) से जंग करो ताकि तुम्हारे दिल में हिकमत (Wisdom) उतर जाए।

रसूले इस्लाम[स०] की ही एक और बड़ी मशहूर हदीस हैः

> जो भी चालीस दिनों तक ख़ुद को अल्लाह के लिए ख़ालिस (Pure) कर लेगा हिकमत (Wisdom) के चश्मे उसके दिल से निकल कर उसकी ज़बान से फूटेंगे।[5]

उसूले काफ़ी के चेप्टर ''इख़लास'' में बिल्कुल यही बात इमाम मोहम्मद बाक़िर[अ०] की तरफ़ से बयान हुई हैः

> जो भी चालीस दिन तक अपने ईमान को बिल्कुल ख़ालिस (Pure) कर लेगा- या इमाम ने कहा कि जो भी चालीस दिन तक अल्लाह को अच्छी तरह से याद कर लेगा (यह फ़र्क़ हदीस बयान करने वाले की तरफ़ से है) तो अल्लाह उसे तक़्वा अता करेगा और उसे इस दुनिया के दर्दों व बीमारियों के बारे में इल्म व बसीरत (समझ) देगा और उसके दिल में हिकमत (Wisdom) डाल देगा जो उसकी ज़बान से जारी होगी।

अल्लामा तबातबाई ने अपनी किताब तफ़सीरे अल-मीज़ान में लिखा है कि रसूले इस्लाम[स०] फ़रमाते हैंः

> अगर तुम लोग ज़्यादा न बोला करते और तुम्हारे दिलों में तमरीज न होती (यानी तुम

हरजाई न होते) तो जो कुछ मैं देख लेता हूँ तुम भी वही देख पाते और जो कुछ मैं कुछ सुन लेता हूँ तुम भी वह सब सुन लेते।

तमरीज ऐसी हरी-भरी जगह को कहते हैं जहाँ हर तरह के जानवर आ जाते हैं, घूमते-फिरते हैं और चरते हैं। रसूले इस्लाम[स०] कहना चाहते हैं कि तुम्हारा दिल उस ज़मीन की तरह है जिसमें कोई भी घुस आता है, न कोई दरवाज़ा है और न कोई चारदीवरी। इसीलिए तुम्हारी आँखों पर पर्दे पड़े हुए हैं।

एक हदीस में इमाम जाफ़र सादिक़[अ०] फ़रमाते हैं:

अगर आदम की औलाद के दिलों के आसपास शैतानों का आना-जाना न होता तो वह आसमानी दुनिया को देख लिया करते।[6]

हमारी दीनी किताबों में इस तरह की बातें बहुत ज़्यादा नज़र आती हैं। बस फ़र्क़ इतना है कि कहीं तक़वा को सीधे बसीरत (समझ) व इल्म (Knowledge) के मिलने से जोड़ दिया गया है और कहीं ज़रा घुमाकर यही बात कही गई है जैसे दुनियावी ख़्वाहिशों (Worldly Desires) के बढ़ जाने और तक़वा के कम हो जाने को रूह व दिल के मर जाने और अक़्ल के नूर के बुझ जाने से जोड़ा गया है।

हज़रत अली[अ०] फ़रमाते हैं:

अगर किसी इंसान को किसी चीज़ से बहुत ज़्यादा मोहब्बत हो जाए तो वह चीज़ उसकी आँखों को अंधा और दिल को बीमार बना देती है।[7]

एक दूसरी जगह इमाम फ़रमाते हैं:

इंसान की ख़ुदपसंदी उन चीज़ों में से है जो उसकी अक़्ल से दुश्मनी व जलन रखती हैं।[8]

नहजुल बलाग़ा ही में एक जगह इमाम फ़रमाते हैं:

अक़्ल ज़्यादातर उन्हीं जगहों पर हारती है जहाँ लालच की बिजली चमकती है।[9]

इन आयतों और इन हदीसों से यह बात अपने आप साबित हो जाती है कि इस्लाम व इस्लामी कल्चर में यह अपने आप में एक फ़ार्मूला है, एक क़ानून है और एक सिस्टम है।
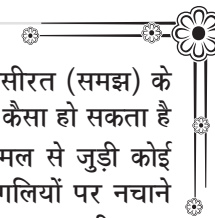
आइए! अब देखते हैं कि तक़वा और बसीरत (समझ) के बीच आख़िर है कौन सा रिश्ता? आख़िर यह कैसा हो सकता है कि अख़लाक़ (Morals) और इंसान के अमल से जुड़ी कोई चीज़ उसकी अक़्ल व सोच को भी अपनी उँगलियों पर नचाने लगे? आख़िर यह कैसे हो सकता है कि इसी तक़वा की वजह से इंसान को हिकमत (Wisdom) मिल जाए और अगर उसके पास तक़वा न हो तो यह हिकमत भी न मिले? वैसे ज़्यादातर लोगों का मानना यह है कि ऐसा नहीं हो सकता, यह तो बेकार की बात है और अगर ऐसा होगा भी तो बस शायरी-वायरी में होता होगा। आम ज़िंदगी में ऐसा नहीं हो सकता कि तक़वा से इंसान को हिकमत (Wisdom) मिल जाए और उसकी अक़्ल से पर्दे हट जाएं।

तक़वा और हिकमते अमली (Practical Wisdom)

सब से पहले यह बात बता देना ज़रूरी है कि तक़वा से जो हिकमत और हक़ व बातिल को पहचानने की सलाहियत पैदा होती है वह हिकमते अमली है, न कि हिकमते नज़री।

उलमा ने कहा है कि अक़्ल दो तरह की होती है:

1- नज़री अक़्ल (Theoretical Intellect)

2- अमली अक़्ल (Practical Intellect)

वैसे इसका मतलब यह नहीं है कि हर इंसान के अंदर दो अक़्लें होती हैं बल्कि इसका मतलब यह है कि इंसान की अक़्ल दो तरह से सोचती है और काम करती है। इन दोनों में एक बुनियादी फ़र्क़ पाया जाता है। वह फ़र्क़ यह है: नज़री सोच और अमली सोच (Theoretical Approach and Practical Approach)। एक का रिश्ता सोच से है और दूसरी का इंसान के कामों से। इस बारे में हम यहाँ ज़्यादा बात नहीं करेंगे बल्कि सिर्फ़ इतना ही समझ लेना काफ़ी है कि मैथ्मेकिटक्स, फ़िलास्फ़ी और नेचुरल साइंसेस की बुनियाद नज़री अक़्ल (Theoretical Intellect) पर विषयों में कॉमन चीज़ यह है कि इन में सिर्फ़ अक़्ल ही इस बात का फ़ैसला करती है कि सही क्या है और ग़लत क्या है? फ़ुलाँ ऐसी है या वैसी? फ़ुलाँ चीज़
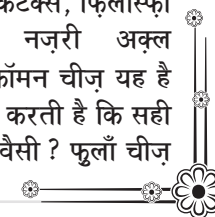
में यह वाली ख़ासियत या वह वाली ?

लेकिन अमली अक़्ल (Practical Intellect) वह अक़्ल है जिस पर ज़िंदगी गुज़ारने के क़ानूनों की बुनियाद रखी हुई है, जिस पर अख़लाक़ की बुनियाद है, जिस के ज़रिए ज़िंदगी गुज़ारी जाती है, घर चलाया जाता है और समाज व कल्चर के लिए क़ानून बनाए जाते हैं। अमली अक़्ल (Practical Intellect) में किसी हक़ीक़त (Reality) के बारे में फ़ैसला इस बुनियाद पर नहीं होता कि वह हक़ीक़त मौजूद है या नहीं बल्कि इस में फ़ैसला ज़िम्मेदारी को देखकर किया जाता है। यह काम किया जाए या वह काम ? इस तरह काम किया जाए या उस तरह ? दूसरे शब्दों में इस तरह कहा जाए कि अमली अक़्ल (Practical Intellect) वही है जिसके ज़रिए अच्छे-बुरे, अच्छाई-बुराई, करना है या नहीं करना है, चाहिए या नहीं चाहिए वग़ैरा को पहचाना जाता है। इंसान अपनी ज़िंदगी में जो भी रास्ता अपनाता है वह उसकी अमली अक़्ल (Practical Intellect) के फ़ैसला करने और काम करने के तरीक़े के हिसाब से होता है। इसका नज़री अक़्ल (Theoretical Intellect) से सीधा कोई रिश्ता नहीं होता।

अगर हमारे दीन ने हम से कहा है कि तक़वा इंसान की अक़्ल पर पड़े बहुत से पर्दों को हटा देता है तो इसका मतलब यही अमली अक़्ल (Practical Intellect) है यानी तक़वा का फ़ाएदा यह होता है कि इंसान अपनी परेशानी और उसके हल व इलाज को ज़्यादा अच्छे तरीक़े से समझने लगता है। इस्लाम यह नहीं कह रहा है कि अगर तुम तक़वा को अपना लोगे तो तुम्हारी नज़री अक़्ल (Theoretical Intellect) बढ़ जाएगी यानी अगर तक़वा पर अमल करोगे तो मैथ्मेटिक्स, फ़िलास्फ़ी या साइंस को आसानी से समझ जाओगे और इन विषयों में आने वाली मुश्किलों को आसानी से हल कर लोगे।

मतलब यह है कि अगर इस्लाम कहता है कि तक़वा से हिकमत (Wisdom) मिलती है, बसीरत (समझ) मिलती है, अक़्ल के सामने से पर्दे हट जाते हैं और इंसान दूर तक देख लेता है तो इस बात का नज़री अक़्ल (Theoretical Intellect) से कोई रिश्ता नहीं है। अगर बहुत से लोग इस मसले में आकर उलझ जाते हैं और सिरे से दीन के इस दावे को

ही ठुकरा देते हैं तो उसकी वजह यही है कि वह तक़वा को नज़री अक़्ल (Theoretical Intellect) से जोड़ देते हैं।

जहां तक अमली अक़्ल (Practical Intellect) की बात है तो बेशक यही सच्चाई है और इस्लाम के आने के बाद से अब तक इस बात की सच्चाई का न जाने कितनी बार तजुर्बा किया चुका है जो हमेशा सही निकला है। इस में कोई शक नहीं है कि तक़वा, दिल की पाकीज़गी और अपनी दिली ख़्वाहिशों (Worldly Desires) को कंट्रोल में रखने से बसीरत (समझ), हिकमत (Wisdom) और अक़्ल हासिल होती है।

वैसे इसका मतलब यह बिल्कुल नहीं है कि अक़्ल एक चिराग़ की तरह है और तक़वा इस चिराग़ का तेल है या अक़्ल इलेक्ट्रिसिटी पैदा करने वाली कोई मशीन है जिससे एक किलो वाट बिजली पैदा होती है और जैसे ही तक़वा आता है फ़ौरन किलो वाट बढ़ जाते हैं। नहीं! ऐसा बिल्कुल नहीं है। मामला कुछ और है।

आइए! नीचे लिखी इस मिसाल पर ग़ौर करते हैं:

अक़्ल के दुश्मन के दुश्मन

हज़रत अली[अ०] फ़रमाते हैं:

तुम्हारे तीन दोस्त और तीन दुश्मन हैं:

तुम्हारे दोस्त यह हैं:

1- तुम्हारा अपना दोस्त, 2- तुम्हारे दोस्त का दोस्त, 3- तुम्हारे दुश्मन का दुश्मन

तुम्हारे दुश्मन यह हैं:

1- तुम्हरा अपना दुश्मन, 2- तुम्हारे दोस्त का दुश्मन, 3- तुम्हारे दुश्मन का दोस्त[10]

यह हदीस यहाँ इसलिए बयान की गई है कि दोस्तों में से एक दोस्त, अपने दुश्मन का दुश्मन भी है। दुश्मन के दुश्मन को इसलिए दोस्त कहा गया है क्योंकि इस से दुश्मन कमज़ोर होता है और ख़ुद दुश्मनी करने वाला इंसान मज़बूत होता है। अपने आप में यह ख़ुद एक फ़ार्मूला है कि दुश्मन का दुश्मन दोस्त की तरह होता है और इस से आदमी की ताक़त ज़्यादा होती है।

यह फ़ार्मूला जो कि सभी आदमियों पर लागू होता है यह रूहानी (Spritual) दुनिया में भी काम आता है। रूहानी दुनिया में पाई जाने वाली ताक़तें भी एक दूसरे पर अपना असर छोड़ती हैं, एक दूसरे को ताक़तवर और कमज़ोर भी बनाती हैं। यह एक ऐसी बात है जिसका कोई इन्कार नहीं कर सकता।

तक़्वा से बसीरत (समझदारी) किस तरह मिलती है?

अक़्ल यानी इंसान की अमली अक़्ल (Practical Intellect) में यानी इंसान को क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए, क्या अच्छा है और क्या बुरा, क्या सही है और क्या ग़लत, क्या ज़िम्मेदारी और क्या ज़िम्मेदारी नहीं है, क्या नेक और क्या बुरा, क्या अच्छाई है और क्या बुराई... इन चीज़ों में इंसान की ख़्वाहिशों (Desires), उसकी हवस व लालच, उसके जज़्बात (Emotions) और तास्सुब वग़ैरा का भी बहुत बड़ा हाथ होता है। अगर यह चीज़ें अपनी सीमा से आगे बढ़ जाएं और इंसान को अपने कंट्रोल में कर लें तो फिर यह अक़्ल को भी अपनी उंगलियों पर नचाने लगती हैं। जब अक़्ल इन्हें कंट्रोल करना चाहती है तो यह शोर मचाने लगती हैं और उसकी काई बात नहीं सुनतीं। जब ऐसा होने लगता है तो इंसान अपनी अक़्ल की बात सुन ही नहीं पाता। अक़्ल पर एक तरह की धूल व गर्द ग़ुबार सी पड़ जाती है। फिर अक़्ल का नूर ख़त्म हो जाता है। अगर किसी जगह कुछ लोग जमा हों जिनमें से एक बोल रहा हो और बाक़ी सब सुन रहे हों तो बाक़ी सब इसीलिए तो सुन पाते हैं क्योंकि एक बोल रहा है और बाक़ी सब चुप हैं लेकिन अगर बोलने वाले के साथ-साथ दूसरे सब लोग भी ऊँची-ऊँची आवाज़ में बोलना शुरू कर दें तो फिर कोई किसी की बात नहीं सुन पाएगा, यहां तक कि पहले बोलने वाला ख़ुद अपनी बात भी नहीं सुन पाएगा। इसी तरह जहाँ कुछ लोग बैठे हों, अगर वहाँ धूल या धुआँ भर जाए तो कोई एक दूसरे को देख भी नहीं पाएगा।

आइए! एक और मिसाल देखते हैं। कॉलिज जाने वाला एक नौजवान जब अपने घर वापस आता है तो घर पर जो कुछ

कॉलिज में पढ़ा है उसे दोहराता है और स्टडी करता है क्योंकि उसे पता है कि अगर ऐसा नहीं करेगा तो जाहिल रह जाएगा और दूसरों से पीछे रह जाएगा जिसके बाद उसकी ज़िंदगी में हज़ारों तरह की मुश्किलें व परेशानियां आ जाएंगी। ऐसा वह अपनी अक़्ल के कहने पर करता है। यह उसकी अक़्ल की आवाज़ होती है। अब हो सकता है कि इस आवाज़ के मुक़ाबले में उसके शौक़, उसका खेल, उसकी दोस्तियां, उसकी ख़्वाहिशें (Desires), मटरगश्तियां और उसका घूमना-फिरना भी शोर मचाने लगे और उसे पढ़ने ही न दे। ज़ाहिर है कि अगर यह शोर ज़्यादा हो जाएगा तो यह नौजवान अपनी अक़्ल की आवाज़ को अनसुना करते हुए अपने आप से कहेगा कि चलो! अभी ज़रा मज़े करते हैं, पढ़ाई-वढ़ाई तो होती ही रहेगी।

अगर इस तरह की ख़्वाहिशें व चाहतें इंसान के अंदर पैदा हो जाएं तो इस से उसकी अक़्ल धीरे-धीरे पीछे होती जाती है और फिर एक दिन काम करना ही बंद कर देती है। दूसरे शब्दों में, इस तरह की ख़्वाहिशें उसकी अक़्ल की दुश्मन होती हैं।

इमाम जाफ़र सादिक़[अ०] फ़रमाते हैंः

> इंसान की ख़्वाहिशें (Worldly Desires) अक़्ल की दुश्मन होती हैं।[(11)]

हज़रत अली[अ०] ख़ुद पसंदी के बारे में कितनी अच्छी बात कह रहे हैंः

> ख़ुद पसंदी और अपनी ही तारीफ़ करना उन चीज़ों में से है जो अक़्ल की दुश्मन हैं।[(12)]

लालच के बारे में इमाम अली[अ०] फ़रमाते हैंः

> ज़्यादातर इंसान उन जगहों पर ठोकर खाता है जहाँ लालच की बिजली उस पर हमला कर देती है।[(13)]

रसूले इस्लाम[स०] ने फ़रमाया हैः

> तुम्हारा सब से बड़ा दुश्मन तुम्हारी हद से बढ़ी हुई ख़्वाहिशें (Worldly Desires) और तुम्हारा दिल है जो तुम्हारे दोनों पहलुओं के बीच में है।[(14)]

यह दुश्मन हमारा सब से बड़ा दुश्मन इसीलिए है क्योंकि

यह हमारी अक़्ल का दुश्मन है जो कि हमारी सब से अच्छी दोस्त है।

तभी तो रसूले इस्लाम ने फ़रमाया हैः

इंसान का असली दोस्त उसकी अक़्ल है।[15]

इंसान के पास अक़्ल एक ऐसी ज़बरदस्त ताक़त है कि उसके सहारे वह अपने किसी भी दुश्मन को मज़ा चखा सकता है लेकिन अगर इंसान अपनी इसी ताक़त का दुश्मन हो जाए तो इस से ख़तरनाक बात और क्या हो सकती है ?

इसलिए इस बात पर ध्यान देना बहुत ज़रूरी है कि इंसान की रूहानी (Spritual) ताक़त से निकलने वाली दूसरी ताक़तें एक दूसरे के साथ टकराव रखती हैं और एक दूसरे पर उलटा असर डालकर एक दूसरे को बेकार भी कर देती हैं। दूसरे शब्दों में यूँ कहा जाए कि यह ताक़तें एक दूसरे की दुश्मन हैं और एक दूसरे से जलती हैं। इन ताक़तों में से एक हवा व हवस यानी लालच, आरज़ुएं व तमन्नाएं और जज़्बात भी हैं।

बस यहीं से अक़्ल के बढ़ने और बसीरत (समझ) व हिकमत (Wisdom) के मिलने में तक़वा का रोल भी साबित हो जाता है। अक़्ल अगर चिराग़ है तो तक़वा उसका तेल बिल्कुल नहीं है बल्कि तक़वा अक़्ल के दुश्मन का दुश्मन है यानी अक़्ल का दोस्त है जिसके लिए हज़रत अली[अ०] ने कहा है कि तुम्हारे दुश्मन का दुश्मन भी तुम्हारा दोस्त है। जैसे ही तक़वा आता है वैसे ही अक़्ल के दुश्मन हवा व हवस (Worldly Desires) को लगाम लगा देता है। अब इसके बाद जज़्बात व एहसासात (Emotions) अक़्ल को अपने क़ाबू में नहीं कर पाते।

इसका मतलब यह हुआ कि इंसान के सोचने के अंदाज़ और फ़ैसला करने में तक़वा अपना असर पूरी तरह दिखाता है लेकिन इसके असर करने का तरीक़ा यह है कि तक़वा अक़्ल के दुश्मन के रास्ते में खड़ा हो जाता है और उसे आगे नहीं बढ़ने देता जिसके बाद अक़्ल के हाथ अच्छी तरह से खुल जाते हैं और कोई उसके आड़े नहीं आ पाता। फिर अक़्ल पूरी तरह आज़ाद हो जाती है, हर तरह की क़ैद से आज़ाद।

इंसान चाहे किसी भी चीज़ में शक कर ले लेकिन इस बारे में शक नहीं कर सकता कि ग़ुस्सा, लालच, हसद, तास्सुब,

ज़िद, ख़ुदपसंदी वग़ैरा जैसी चीज़ें इंसानी ज़िंदगी को किसी काम का नहीं रहने देतीं। आदमी अपनी हवस व लालच के आगे अंधा हो जाता है। क्या कोई इस सच्चाई से इन्कार कर सकता है कि इंसानों की एक सिफ़त (Quality) यह भी है कि जो बुराई उन्हें दूसरों में दिखाई देती है वह बुराई उन्हें अपने अंदर बिल्कुल नज़र नहीं आती जबकि वह बुराई ख़ुद उस में दूसरों से ज़्यादा होती है। अपने अंदर अपनी किसी बुराई को न देख पाने की वजह क्या ख़ुदपसंदी व ग़ुरूर के अलावा भी कुछ और हो सकती है ? क्या कोई इस बात को झुठला सकता है कि अख़लाक़ (Morals) को अपनाने वाले मुत्तक़ी लोग जो ग़ुस्सा, लालच और ख़ुदपसंदी जैसी चीज़ों पर कंट्रोल पा लेते हैं, वह दूसरों से ज़्यादा बेहतर तौर पर अपनी बुराईयों को देख लेते हैं ? क्या इंसान के लिए इस से भी ज़्यादा फ़ाएदेमंद कोई इल्म व हिकमत (Wisdom) हो सकती है जिसके ज़रिए वह ख़ुद अपनी बुराईयों को समझ जाए ?

अगर अल्लाह तआला से हमें तौफ़ीक़ मिल जाए कि हम अपनी ख़्वाहिशों (Worldly Desires) और अपनी हवस व लालच को कंट्रोल कर सकें तब जाकर हमारी समझ में आएगा कि हम कितने अच्छे रास्ते पर चल पड़े हैं और अब हमारी अक़्ल कितनी दूर तक देख पा रही है। तब जाकर हमारी समझ में आएगा कि अरे! यह सारी बातें तो बड़ी आसान थीं और इन के लिए तो किसी भी दलील (Argument) या सुबूत की ज़रूरत नहीं थी।

क्या समझदारी व अक़्ल दो अलग-अलग चीज़ें हैं ?

हमारे ही बीच कुछ लोग ऐसे भी दिखाई देते हैं जो इल्मी (Literary) कामों में तो बहुत तेज़ और दूसरों से बहुत आगे होते हैं लेकिन अपनी प्रेक्टिकल ज़िंदगी में बड़े परेशान और उलझे हुए होते हैं। इस के उलट ऐसे भी लोग हैं जो इल्मी कामों में तो पीछे होते हैं लेकिन ज़िंदगी के मामलों को बड़ी अच्छी तरह से समझ कर हल कर लेते हैं। इस वजह से लगता यह है कि इंसान के अंदर समझदारी व अक़्ल नाम की दो अलग-अलग सलाहियतें (Powers) हैं। कुछ लोग ज़्यादा

समझदार हैं और कुछ लोग ज़्यादा अक़्लमंद।

जबकि सच्चाई यह है कि हमारे पास अक़्ल व समझदारी नाम की दो अलग-अलग चीज़ें नहीं हैं। इल्मी (Literary) मैदान में कामयाब लोगों की कामयाबी और आम ज़िंदमी के मामलों में परेशान लोगों की परेशानी की वजह वही है जो ऊपर बयान हो चुकी है कि अक़्ल के दुश्मनों के हमलों की वजह से उनकी अक़्ल पीछे चली जाती है और वह अक़्ल की आवाज़ को सुन ही नहीं पाते।

पुराने ज़माने से ही बहुत से उलमा इस बात को मानते रहे हैं कि इंसान के अंदर जितनी भी अक़्ल या समझदारी वाली ताक़तें हैं उनके अलावा भी एक छुपी हुई ताक़त और है जिसको ''इल्हाम'' कहते हैं। आज साइंस ने भी किसी हद तक इस बात को मान लिया है कि इंसान के अंदर एक ताक़त और भी पाई जाती है जो दूसरी सारी ताक़तों से अलग है। यह भी दूसरी ताक़तों की तरह किसी इंसान में कम और किसी में ज़्यादा पाई जाती है। दूसरी सलाहियतों (Powers) की तरह इसको भी बढ़ाया और मज़बूत बनाया जा सकता है।

आइए! अब देखते हैं कि अपनी इस सलाहियत (Power) को हम किस तरह बढ़ा सकते हैं।

इंसान के अंदर पाई जाने वाली इस ताक़त को बढ़ाने वाली चीज़ें तक़वा (Piousness), पाकीज़गी (पवित्रता), अख़लाक़ी बातों (Morals) को अपनाना और अपनी दिली ख़्वाहिशों (Worldly Desires) से मुक़ाबला करना है। यह एक ऐसी सच्चाई है जिसका दीनी लिहाज़ से इन्कार ही नहीं किया जा सकता।

इमाम अली[अ०] इस बारे में फ़रमाते हैंः

> अपनी अक़्ल को ज़िन्दा कर लिया है और अपनी दिली ख़्वाहिशों (Worldly Desires) को इतना मार लिया है कि इस का असर उसके बदन में भी दिखने लगा है जिससे उसकी हड्डियाँ कमज़ोर हो गई हैं... इसी बीच एक तेज़ बिजली चमकती है और उसे रास्ता दिखाकर रास्ते पर ले आती है। फिर यहाँ से वहाँ और वहाँ से यहाँ लेती जाती है यहाँ तक कि वह बिल्कुल सीधे रास्ते पर आ जाता है।[16]

जिसे क़ुरआन ने इस तरह बयान किया हैः

> जिसके ज़रिए ख़ुदा अपनी मर्ज़ी पर चलने वालों को सलामती के रास्तों की तरफ़ ले जाता है और उन्हें अंधेरों से निकाल कर अपने हुक्म से नूर की तरफ़ और सीधे रास्ते पर ले आता है।[17]

तक़वा और इंसानी एहसासात (Feelings) पर इसका असर

तक़वा (Pious) का एक असर और भी है जो सीधा इंसान के एहसासात (Feelings) पर होता है। अगर तक़वा वाला इंसान ख़ुद को बुराईयों से दूर रखता है, बुरे कामों से बचता है, चापलूसी व दिखावे की तरफ़ देखता तक नहीं और अपने दिल को पाक रखता है और उसका ध्यान इन बातों की ज़ाहिर के बजाए इनकी गहराई पर होता है तो ऐसे आदमी के एहसासात उस आदमी से कहीं अलग होते हैं जो दिन-रात बुराईयों में डूबा हुआ और अपनी ही दुनिया में खोया रहता है। ऐसे आदमी के एहसासात कहीं अच्छे और बुलंद होते हैं। रूहानी (Spritual) चीज़ों की ख़ूबसूरती इसकी निगाह में बढ़ जाती है। यह दुनिया को एक दूसरे ही अंदाज़ से देखता है। इस दुनिया में जगह-जगह फैली हुई ख़ूबसूरती इसके लिए कई गुना बढ़ जाती है।

आज बहुत से लोग पूछते भी हैं कि अब हमारे बीच पहले जैसे शायर क्यों पैदा नहीं होते? आज के शायरों में पहले शायरों जैसा असर क्यों नहीं है? जबकि अब तो हर चीज़ तरक़्क़ी कर चुकी है, इल्म आगे बढ़ चुका है, साइंस भी कहाँ से कहाँ पहुँच चुकी है यानी हर लिहाज़ से हम आगे बढ़ चुके हैं।

अगर आज के शायरों को बुरा न लगे तो असली बात यह है कि शायरी के लिए जहाँ नेचुरल स्किल की ज़रूरत है वहीं एक और चीज़ की भी ज़रूरत है और वह है तक़वा व रूहानियत (Sprituality) का ध्यान रखना यानी अपनी हवस और अपनी दिली ख़्वाहिशों (Worldly Desires) का दीवाना न होना। अपने दिल का क़ैदी होने के बजाए एक आज़ाद इंसान होना। अगर ऐसा होगा तो इंसान के एहसासात (Emotions

and Feelings) में भी बदलाव आ जाएगा।

तक़्वा और मुश्किलों पर कंट्रोल पाने की ताक़त

क़ुरआन ने सूरए तलाक़ की आयत/2 में तक़्वा का एक और फ़ाएदा भी बताया हैः

> जिसके पास भी ख़ुदा का तक़्वा होगा, ख़ुदा उसे मुसीबतों व परेशानियों से बाहर निकलने का रास्ता दिखा देगा।

इसी सूरे की आयत/4 में ख़ुदा इस तरह फ़रमाता हैः

> जिसके पास भी अल्लाह का तक़्वा होगा अल्लाह उसके कामों में एक तरह की आसानी पैदा कर देगा।

इस बारे में हज़रत अली[अ०] ने भी इस तरह फ़रमाया हैः

> जो भी तक़्वा का हाथ थाम लेगा, परेशानियाँ व सख़्तियाँ उसके पास आकर उस से दूर चली जाएंगी और जिन कामों को करने में उसे मुश्किलों का सामना करना पड़ता था उन्हीं कामों में उसे मज़ा आने लगेगा। जो मौजें उसे बहाकर अपने साथ ले जाने वाली थीं वही अब उस से दूर हो जाएंगी। कठिन काम उसके लिए आसान हो जाएंगे।[18]

अब यहाँ पर सवाल यह पैदा होता है कि आख़िर तक़्वा का मुश्किलों व परेशानियों के आसान होने से क्या रिलेशन है ? भला इंसान तक़्वा से अपनी मुश्किलों पर कैसे कंट्रोल पा सकता है ?

दो तरह की परेशानियाँ

इंसान को जिन मुश्किलों, सख़्तियों और परेशानियों का सामना करना पड़ता है वह दो तरह की होती हैंः

पहली वह जिन पर इंसान का कुछ भी बस नहीं चलता जैसे वह किसी जहाज़ पर सफ़र कर रहा हो और जहाज़ ख़राब हो जाए या समन्दर में कश्ती पर कहीं जा रहा हो और तूफ़ान

आ जाए जिस में उसकी जान भी चले जाने का ख़तरा पैदा हो जाए। यह वह मुश्किलें हैं जो किसी के भी ऊपर आ सकती हैं और इन में इंसान कुछ भी नहीं कर सकता क्योंकि यह अचानक आती हैं।

दूसरी तरह की परेशानियाँ वह हैं जिन में इंसान ख़ुद अपने इरादे व मर्ज़ी से फंसता है, चाहे तो फंसे चाहे तो न फंसे और अगर फंस भी जाए तो किस तरह बाहर निकलना है यह भी उसी के हाथ में होता है जैसे अख़लाक़ी (Moral Values) परेशानियाँ या समाजी मुश्किलें।

इस तरह दो बातें हुईः

एकः पहली वाली परेशानियों में तक़्वा से पैदा होने वाली आसानी

दोः दूसरी तरह की परेशानियों में तक़्वा से पैदा होने वाली आसानी

पहली वाली परेशानियों के बारे में तो अभी इस वक़्त हम बात नहीं कर सकते कि क्या क़ुरआन ने इस तरह की परेशानियों में आसानी की बात भी की है या नहीं। वैसे हो सकता है कि दुनिया में कोई ऐसी चीज़ भी मौजूद हो जो इस तरह की परेशानियों को भी आसान बना देती हो या ख़ुद ख़ुदा ने ही किसी तरह की कोई गारंटी ले रखी हो जैसे दुआओं का क़ुबूल होना। क्या पहली वाली परेशानियों में दुआएं इंसान को नहीं बचाती हैं ? बिल्कुल बचाती हैं।

लेकिन नहजुल में एक जगह इमाम अली[अ०] ने एक ऐसी बात कही है जिससे हम यह मतलब निकाल सकते हैं कि तक़्वा दूसरी तरह की परेशानियों को आसान बना देता है। ख़तबा/181 में इमाम अली फ़रमाते हैंः

> जान लो कि जिसके पास भी अल्लाह का तक़्वा होगा अल्लाह उसे फ़ितनों से बाहर निकलने का रास्ता दिखा देगा और अंधेरों से उजालों की तरफ़ ले जाएगा।

फ़ितने वही समाजी-अख़लाक़ी (Socio-Moral) बीमारियाँ और तरह-तरह की परेशानियाँ हैं जिनके लिए हम ने कहा था तक़्वा इन को आसान बना देता है।

पहली वाली मुश्किलों का सामना इंसान को बहुत कम

करना पड़ता है। इंसान की ज़्यादातर मुश्किलें जो उसकी ज़िंदगी को हर तरह से दुखी बना देती हैं और उसकी दुनिया की और आख़िरत की, दोनों ज़िंदगियों को मुश्किल भरा बना देती हैं वह यही रोज़ाना पैदा होने वाले मसले और अख़लाक़ी-समाजी मुश्किलें हैं।

एक हदीस में हैः

> तुम्हारा सब से बड़ा दुश्मन तुम्हारा वह दिल है जो तुम्हारे दोनों पहलुओं के बीच में है।

इस हदीस को ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि ज़्यादातर परेशानियों व मुश्किलों का ज़िम्मेदार ख़ुद इंसान ही होता है और हर इंसान ही अपना सब से बड़ा दुश्मन भी होता है। यानी यह इंसान ही है जो अपना कल और अपनी क़िस्मत ख़ुद अपने ही हाथों से लिखता है। ज़्यादातर इंसानों का अपने साथ दुश्मनी भरा Behaviour होता है।

हमारी ज़्यादातर मुश्किलें कहीं बाहर से आकर हम पर हमला नहीं करती हैं बल्कि हम ख़ुद अपने हाथों से अपने लिए मुश्किलें पैदा कर लेते हैं। अगर कभी इंसान खुद अपनी ज़िंदगी में झांक कर देखे या दूसरे की ज़िंदगियों की स्टडी करे तो उसकी समझ में यह बात आ जाएगी कि हाँ! ऐसा ही है।

इन बातों को अगर ध्यान में रखा जाए तो यह भी आसानी से समझ में आ जाता है कि तक़्वा नाम का हथियार इंसानों को अख़लाक़ी-समाजी (Socio-Moral) मुश्किलों से बाहर निकालने में कितना काम आता है।

सूरए आराफ़ की आयत/201 में ख़ुदा फ़रमाता हैः

> जो लोग तक़्वा वाले हैं जब शैतान की तरफ़ से कोई ख़याल उन्हें छूना भी चाहता है तो वह ख़ुदा को याद करते हैं और हक़ीक़तों (Realities) को देखने लगते हैं।

जिस वजह से तक़्वा इंसानों के अंदर समझदारी पैदा करता है उसी वजह से इंसानों को मुश्किलों व परेशानियों से भी निकालता है। मुश्किलें व परेशानियाँ अंधेरों की वजह से पैदा होती हैं। कौन से अंधेरे? गुनाहों, बुराईयों और दुनिया से शदीद मोहब्बत की वजह से पैदा होने वाले अंधेरे जो इंसान को अंधा बना देते हैं और उसे कुछ भी दिखाई नहीं देता। अब जैसे

ही तक़्वा का नूर व उजाला पैदा होता है इंसान को अपना रास्ता बिल्कुल साफ़ दिखाई देने लगता है। फिर न वह किसी खाई में गिरता है और न किसी गढ़े में, न रास्ते से भटकता है और न अपनी मंज़िल को गुम करता है। इसकी वजह से उसकी मुश्किलें व परेशानियाँ काफ़ी कम हो जाती हैं और अगर वह किसी मुश्किल में फंस भी जाए तो तक़्वा की रोशनी में उस से बाहर निकलने का रास्ता आसानी से ढूँढ लेता है।

इन सारी बातों से हटकर तक़्वा का एक फ़ाएदा और भी है कि इंसान जब फ़ालतू, बेकार व हराम कामों में अपनी एनर्जी को बर्बाद ही नहीं करता है तो उसकी यही एनर्जी दूसरी अच्छी जगहों पर काम आ जाती है। इस बात में तो किसी को कोई शक नहीं है कि एक मज़बूत इरादे वाला इंसान जिसके पास ताक़त भी हो और जिसकी पर्सनालिटी भी अच्छी हो वह दूसरों के मुक़ाबले में कहीं अच्छे फ़ैसले ले सकता है और बेहतर तौर पर अपने लिए बाहर निकलने का रास्ता तलाश कर सकता है। जिस तरह रोशनी से इंसान को अपना रास्ता साफ़ दिखाई देता है बिल्कुल उसी तरह ख़ुदा ने इंसान को एक दूसरी ताक़त और एक दूसरा नूर भी दिया है जिसे तक़्वा कहते हैं जो इंसान को सीधा रास्ता दिखा देता है।

सूरए यूसुफ़ के आख़िर में एक आयत है जो असल में इस क़ुरआन की इस अजीब कहानी का निचोड़ हैं। हज़रत यूसुफ़[अ०] की कहानी तो हम सभी ने सुनी है। कहानी के आख़िरी हिस्से में जब हज़रत यूसुफ़ को मिस्र का बादशाह बना दिया जाता है और जब सूखे व भुखमरी की वजह से अनाज लेने के लिए हज़रत यूसुफ़ के भाई मिस्र में आ जाते हैं तो वह अपने भाई यूसुफ़ को नहीं पहचान पाते लेकिन हज़रत यूसुफ़ उन सभी को पहचान जाते हैं और उन में एक बिनजामिन नाम के अपने भाई को किसी बहाने से अपने ही पास रोक लेते हैं। बिनजामिन अपनी माँ की तरफ़ से भी हज़रत यूसुफ़ के भाई थे। बहरहाल हज़रत यूसुफ़ के दूसरे भाई दोबारा उनके पास वापस आते हैं और उनसे अपनी झुकी हुई गदर्नों के साथ खाने के लिए अनाज माँगते हैं।

क़ुरआन ने इस बात को बड़े ही ख़ूबसूरत अंदाज़ में बयान किया है और हज़रत यूसुफ़ के भाईयों की हालत का बड़ा ज़बरदस्त नक़्शा खींच दिया हैः

> जब वह लोग दोबारा यूसुफ़ के पास गए तो कहने
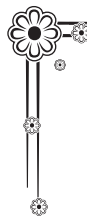
लगे कि ऐ अज़ीज़! हमें और हमारे घर वालों को बड़ी तकलीफ़ है। हम बहुत थोड़ी से पूँजी अपने साथ लाए हैं। आप हमें पूरा-पूरा अनाज दे दीजिए और हम पर एहसान कीजिए क्योंकि ख़ुदा नेक काम करने वालों को अच्छा बदला देता है।

लेकिन अभी तक हज़रत यूसुफ़ ने उन्हें अपने बारे में नहीं बताया था और वह भी अपने भाई यूसुफ़ को नहीं पहचान पाए थे। अब जब हज़रत यूसुफ़ ने ख़ुद को पहचनवाना चाहा तो इस तरह कहाः

उन्होंने कहा कि क्या तुम्हें पता है कि तुम ने यूसुफ़ और उसके भाई के साथ क्या किया था? जबकि तुम बिल्कुल जाहिल थे।

जैसे ही हज़रत यूसुफ़ ने कहा कि क्या तुम्हें याद है कि तुम ने यूसुफ़ के साथ क्या किया था तो वह सब के सब भौंचक्के रह गए और फौरन पूछाः

क्या आप ही यूसुफ़ हैं?

हज़रत यूसुफ़ ने कहाः

बेशक! मैं ही यूसुफ़ हूँ और यह मेरा भाई है। अल्लाह ने हमारे ऊपर एहसान किया है।

इस के बाद हज़रत यूसुफ़ ने कहाः

जो कोई भी तक़वा और सब्र पर चलने वाला होता है, अल्लाह अच्छे काम करने वालों के बदले को बर्बाद नहीं करता है।[19]

यानी यह जो सब कुछ तुम देख रहे हो यह तक़वा की वजह से ही है, यह पाकीज़गी और गुनाहों से दूरी की वजह से ही है। मैं तो ग़ुलाम बना दिया गया था और जाने कहाँ-कहाँ ठोकरें खाई थीं लेकिन मैंने हर जगह और हर मौक़े पर अपने तक़वा का ध्यान रखा था। बात यहाँ तक पहुँच गई थी कि मिस्र के बादशाह की बीवी जो कि मिस्र की सब से ख़ूबसूरत औरत थी उस ने मुझ से ग़लत काम भी करवाना चाहा लेकिन मैंने अपने आप को अपने तक़वा के ज़रिए बचा लिया और ख़ुदा से कहाः

ऐ मेरे ख़ुदा! यह क़ैद मुझे उस काम से ज़्यादा पसंद
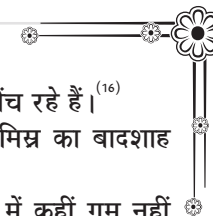
है जिसकी तरफ़ यह लोग मुझे खींच रहे हैं।[16]

उस वक़्त के तक़वा ने ही मुझे आज मिस्र का बादशाह बना दिया है।

तक़वा और गुनाहों से दूरी इस दुनिया में कहीं गुम नहीं होती है बल्कि यह यहीं इंसान के आसपास रहती है और उसे गुमराहियों में बहकने से बचा लेती है।

तभी तो क़ुरआन ने कहा हैः

जो कोई भी तक़वा और सब्र पर चलने वाला होता है, अल्लाह अच्छे काम करने वालों के बदले को बर्बाद नहीं करता है।

ऐसा लगता है जैसे क़ुरआन ने हज़रत यूसुफ़ की कहानी का पूरा रिज़ल्ट इसी एक आयत में दे दिया हो कि जो कुछ मिलेगा वह सिर्फ़ तक़वा से ही मिलेगा। तक़वा आदमी को मुश्किलों व मुसीबतों से बाहर निकाल देता है और इज़्ज़त के सब से ऊँचे दर्जे पर पहुँचा देता है। जो लोग तक़वा को अपना लेते हैं और हर हाल में अपने आप को बचाए रहते हैं उन्हें न कहीं हार होती है और न कहीं उनका रास्ता बंद होता है।

जब हम इमाम हुसैन[अ०] की उन बातों को सुनते हैं जो इमाम ने आशूरा के दिन आख़िरी वक़्त अपने घर वालों के साथ की थीं और किस ईमान व इत्मिनान से उन्हें दिलासा दिया था तो आँखें फटी की फटी रह जाती हैं कि ऐ अल्लाह! यह कौन सा ईमान है और यह कौन सा इत्मिनान है? इमाम हुसैन[अ०] को यह इत्मिनान व सूकून कहाँ से मिला था?

किताबों में लिखा हैः

इमाम हुसैन[अ०] दोबारा अपने घर वालों को ख़ुदा हाफ़िज़ कहने के लिए आए और उन से कहा कि अब मुसीबतों को बर्दाश्त करने के लिए तैयार हो जाओ। जान लो कि ख़ुदा तुम्हारा साथ देने वाला और मदद करने वाला है। ख़ुदा तुम्हें निजात देगा और तुम्हारे काम को अच्छा बना देगा। तुम्हारे दुश्मनों को तरह-तरह के अज़ाब व परेशानियों मे उलझा देगा और तुम्हें तुम्हारी इन मुसीबतों के बदले में तरह-तरह की नेमतें देगा। इसलिए
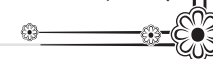
किसी भी तरह की कोई शिकायत न करना। अपनी ज़बान पर किसी भी तरह की कोई बात मत लाना कि कहीं तुम्हारा दर्जा न कम हो जाए।[20]

इमाम हुसैन[अ०] को अपनी कामयाबी पर जितना सुकून था और जिस तरह वह अपने घर वालों को समझाकर इत्मिनान दिला रहे थे वह क़ुरआन की उसी आयत की वजह से था जिसमें अल्लाह कह रहा है कि जो कोई भी तक़वा और सब्र पर चलने वाला होता है, अल्लाह अच्छे काम करने वालों के बदले को बर्बाद नहीं करता है।

हज़रत यूसुफ़[अ०] ने भी जब तक़वा पर अमल करने के बाद अपने काम का रिज़ल्ट देखा था तो ख़ुशी-ख़ुशी अपने भाईयों से यही कहा थाः

> जो कोई भी तक़वा और सब्र पर चलने वाला होता है, अल्लाह अच्छे काम करने वालों के बदले को बर्बाद नहीं करता है।

लेकिन इमाम हुसैन[अ०] की कहानी अभी ख़त्म भी नहीं हुई थी और अभी उन्हें अपना रिज़ल्ट भी नहीं मिला था कि वही बात कह दी जो हज़रत यूसुफ़[अ०] ने कही थी।

इमाम हुसैन[अ०] की बातें फूलों की तरह उनके घर वालों के दिलों पर जाकर लगीं और फिर उन्होंने हर तरह की मुसीबतों को बर्दाश्त कर लिया लेकिन यह सब कुछ तक़वा की वजह से ही हो सका था। फिर आख़िर में रिज़ल्ट भी वही निकला जिसका इमाम हुसैन[अ०] ने वादा किया था और ख़ुद ख़ुदा ने जिसके बारे में क़ुरआन में एलान किया था।

कुछ ही दिनों के बाद हम देखते हैं कि जनाबे ज़ैनब[स०] भी वही बात कह रही हैं जो इमाम हुसैन[अ०] की ज़बान पर थी।

जनाबे ज़ैनब[स०] ने यज़ीद से कहा थाः

> तुझे जो भी चाल चलना है चल ले और जो भी तेरा दिल चाहे कर ले लेकिन ख़ुदा की क़सम! तू हमारे नाम और हमारी मोहब्बत व एहतेराम को ख़त्म नहीं कर सकता। ख़ुदा की 'वही' हमारे ही घर में उतरी थी, तू उस 'वही' को नहीं मार सकता। तेरे लिए ज़िल्लत, बदनामी और बेइज़्ज़ती के सिवा इस दुनिया में कुछ भी नहीं बचेगा।

1- नहजुल बलाग़ा, ख़ुतबा/189
2- नहजुल बलाग़ा, ख़ुतबा/289
3- नहजुल बलाग़ा, ख़ुतबा/196
4- उयूनो अख़बार अल-रज़ा/258, उसूले काफ़ी, जि. 2, पेज/16, उद्दतुद्दाई/170 यह हदीस इन किताबों में अलग-अलग शब्दों के साथ लेकिन क़रीब-क़रीब एक ही मायनी में बयान हुई है।
5- मुहज्जतुल बैज़ा, जि. 2, पेज/125
6- नहजुल बलाग़ा, ख़ुतबा/107
7- नहजुल बलाग़ा, हिकमत/212
8- नहजुल बलाग़ा, हिकमत/219
9- नहजुल बलाग़ा, हिकमत/295
10- मिस्बाहुश्शरीआ, चेप्टर/38, पेज. 223
11- नहजुल बलाग़ा, हिकमत/212
12- नहजुल बलाग़ा, हिकमत/219
13- बिहारूल अनवार, जि. 70, पेज. 64
14- बिहारूल अनवार, जि. 1, पेज. 87
15- बिहारूल अनवार, ख़ुतबा- 218
16- सूरए माएदा/16
17- नहजुल बलाग़ा, ख़ुतबा- 196
18-सूरए यूसुफ़/88-90
19- सूरए यूसुफ़/33
20- नफ़्सुल महमूम/355 व 445
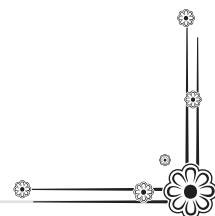
(2)

अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर

(अच्छाईयों की तरफ़ बुलाना और बुराईयों से रोकना)

अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर

यानी अच्छाईयों की तरफ़ बुलाना व बुराईयों से रोकना इस्लाम के बुनियादी क़ानूनों में से है। खुद क़ुरआन ने भी इस बारे में बड़ा साफ़ साफ़ हुक्म दिया है। हदीसों में भी इस पर बहुत ज़ोर दिया गया है। इस के बाद आने वाले ज़मानों में उलमा ने भी इस इस्लामी क़ानून पर काफ़ी कुछ कहा और लिखा है। इसीलिए इस्लामी किताबों में इस बारे में बहुत कुछ मौजूद है। यही वजह है कि फ़िक़ह (Jurisprudence) की किताबों में सब से बढ़कर इसी बारे में लिखा गया है।

नमाज़-रोज़े की तरह यह भी एक वाजिब हुक्म है बल्कि यूँ कहा जाए कि अगर इस हुक्म पर सही तरह से अमल न किया जाए तो बाक़ी सारे दीनी अहकाम व क़ानूनों को भी लागू नहीं किया जा सकता लेकिन इस बीच हुआ यह है कि हम ने नमाज़-रोज़े को ही सारा दीन समझ लिया है और इस्लाम के इस बुनियादी क़ानून को सिरे से अंदेखा कर दिया है। नमाज़, रोज़े, हज, ख़ुम्स और तवल्ला-तबर्रा की तरह यह भी फ़ुरूए दीन में ही गिना जाता है लेकिन इस पर अमल तो नहीं होता।

क्यों ? आइए! देखते हैं... ।

अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर (अच्छाईयों की तरफ़ बुलाना और बुराईयों से रोकना) इस्लाम के बुनियादी क़ानूनों में से है। ख़ुद क़ुरआन करीम ने भी बहुत खुलकर इस बारे में बहुत साफ़-साफ़ हुक्म दिया है। हदीसों में भी इस पर बहुत ज़ोर दिया गया है। इस के बाद आने वाले ज़मानों में उलमा ने भी इस इस्लामी क़ानून पर काफ़ी कुछ कहा और लिखा है। इसलिए इस्लामी किताबों में इस बारे में बहुत कुछ मौजूद है। यही वजह है कि फ़िक़ह (Jurisprudence) की किताबों में सब से बढ़कर इसी बारे में लिखा गया है।

जिन चीज़ों के बारे में उलमा बात करते हैं

आमतौर पर उलमा जब इस बारे में बात करते हैं तो अपनी बात को कई हिस्सों में बांट लेते है। जैसेः

सब से पहले इस बारे में क़ुरआन में मौजूद बहुत सी आयतों और मासूमीन[अ०] की एक बहुत बड़ी तादाद में मौजूद हदीसों को बयान करते हैं।

उस के बाद मारूफ़ व मुन्कर (अच्छाईयों व बुराईयों) की परिभाषा और मायनी बयान करते हैं।

तीसरे हिस्से में यह बयान करते हैं कि अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर (अच्छाईयों की तरफ़ बुलाना और बुराईयों से रोकना) वाजिबे ऐनी है या वाजिबे किफ़ाई यानी क्या यह एक ऐसा वाजिब काम है जो हर इंसान पर वाजिब है

या ऐसा वाजिब है कि अगर कुछ लोग पूरा कर दें तो बाक़ी लोगों से इस बारे में कोई सवाल-जवाब नहीं होगा?

अगले हिस्से में उलमा यह बयान करते हैं कि अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर करने की शर्तें क्या-क्या हैं क्योंकि हर शरई काम की कुछ न कुछ शर्तें भी होती हैं। शरई ज़िम्मेदारियों के लिए कुछ आम शर्तें होती हैं जिनका हर इंसान के लिए होना ज़रूरी हैं। इसके अलावा कुछ ख़ास शर्तें भी हो सकती हैं। सवाल यह है कि क्या अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर की भी अपनी कुछ ख़ास शर्तें हैं कि नहीं?

आमतौर पर उलमा अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर की चार शर्तें बयान करते हैंः

पहली शर्त इल्म

दूसरी शर्त असर होने की उम्मीद व नतीजा

तीसरी शर्त किसी तरह के नुक़सान के ख़तरे का न होना और अगर उलमा की ज़बान में कहा जाए तो यूँ कहा जाएगा कि इस से कोई दूसरी बुराई न पैदा हो रही हो

चौथी शर्त यह है कि ग़लती करने वाला अपने ग़लती पर अड़ न गया हो यानी ऐसा न हो कि जिस ने अच्छाई को छोड़ दिया था या किसी बुराई को करने लगा था उसे अपने काम पर कोई पछतावा न हो।

साथ ही उलमा अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर के दर्जों (Categories) के बारे में भी बात करते हैं। हदीसों में इन दर्जों के बारे में साफ़-साफ़ बता दिया गया है कि अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर के तीन दर्जे हैंः दिल से, ज़बान से और हाथ से।

उलमा ने इन तीनों दर्जों के बारे में तफ़सील (Detail) से बात की है और कहा है कि पहली स्टेज में मुसलमान को चाहिए कि अगर कोई वाजिब कामों को छोड़ रहा है या हराम कामों को कर रहा है तो अपने दिल में इन कामों से नफ़रत पैदा करे। इस दिली नफ़रत का सब से निचला दर्जा यह है कि इंसान ऐसे मौक़ों पर निगेटिव रिएक्शन दिखाए यानी जहाँ कहीं भी ऐसा हो रहा हो वहाँ से उठ जाए, दिली अफ़सोस दिखाए और अपने बर्ताव (Behaviour) से अपनी दिली हालत को जताए भी।

ज़बान से कहने की स्टेज आए तो पहले नर्मी के साथ

समझाए और नसीहत करे। अगर इस से कोई फ़ाएदा न हो तभी सख़्ती के साथ बात करे।

हाथ का इस्तेमाल करने की नौबत आ जाए तो इस के लिए भी उलमा ने दर्जाबंदी की है और कहा है कि कभी कभी ज़ोर-ज़बरदस्ती और हाथ-पैर की नौबत भी आ जाती है जिसमें ऐसा भी होता है कि सामने वाले को जिस्मानी नुक़सान या चोट भी पहुँच सकती है बल्कि हो सकता है कि सामने वाले को क़त्ल भी करना पड़ जाए। जब यह नौबत आ जाती है तो उलमा यहाँ आकर ठहरते हैं और कहते हैं कि यह काम आम लोगों का नहीं है। आम लोगों को यह हक़ नहीं है कि वह ख़ुद से इस तरह के कामों को हाथ लगाएं। अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर की इस स्टेज में वही आगे बढ़कर मोर्चा संभाल सकता है जो या तो ख़ुद हाकिमे शरई (Religious Authority) हो या उसे हाकिमे शरई की तरफ़ से इजाज़त मिली हुई हो। अगर आम लोगों को यह काम सोंप दिया गया तो पूरे समाज में स्ट्रक्चर बिखर जाएगा।

इस के अलावा अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर के बारे में बात करते वक़्त उलमा कुछ दूसरे मसलों को भी छेड़ते हैं लकिन अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर से उनका सीधा कोई रिश्ता नहीं है जैसे अगर सज़ा देना हो तो कौन देगा? इमाम ज़माना[अ०] की ग़ैबत के ज़माने में यानी आज के ज़माने में यह ज़िम्मेदारी फ़क़ीह व उलमा की है कि नहीं? क़ुरआन ने सज़ाओं के लिए ''हुदूद'' शब्द इस्तेमाल किया है जो कि 'हद' का बहुवचन है। हद यानी सज़ा के लिए इस्लाम ने पहले ही से फ़ार्मूले बना दिए हैं जैसे चोरी की हद (सज़ा) या क़त्ल की हद। इसके मुक़ाबले में एक चीज़ और है जिसको ''ताज़ीर'' कहते हैं। हद व ताज़ीर में फ़र्क़ यह है कि ताज़ीर वह सज़ाएं हैं जिनमें इस्लाम ने सज़ओं की कोई सीमा तय नहीं की है बल्कि यह काम हाकिमे शरई (Religious Authority) पर छोड़ दिया है कि वह हालात, ज़रूरत और जुर्म को देखकर जितनी और जैसी सज़ा देना ज़रूरी हो उतनी दे दे।

अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर की तरह ''हदें व ताज़ीर'' (सज़ाएं) भी इसी लिए रखी गई हैं ताकि लोगों के

बीच बुराईयों को रोका जा सके और अच्छाईयों को फैलाया जा सके।

अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर के बारे में खुलासे के साथ यह वह बातें थीं जो आमतौर पर उलमा कहते या लिखते हैं।

अब आइए! देखते हैं कि इस्लाम में अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर (अच्छाईयों की तरफ़ बुलाना और बुराईयों से रोकना) का इतिहास क्या है लेकिन हम इस पर अमली (Practical) लिहाज़ से नज़र डालेंगे कि मुसलमानों ने इस इस्लामी फ़ार्मूले पर किस तरह और कैसे अमल किया है? यानी यह कि अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर करने का वक़्त आता था तो वह क्या करते थे?

दायरा-ए-हिस्बा

(Department of Guidance)

क़रीब हज़ार साल पहले उस वक़्त की इस्लामी हुकूमत ने सरकारी तौर पर एक गाइडेंस डिर्पामेंट बनाया था जिसको ''दायरा-ए-हिस्बा'' या ''एहतेसाब'' कहा जाता था जो सदियों तक चलता रहा। इस डिर्पामेंट को शुरू किए जाने और इसका नाम रखे जाने की बिल्कुल ठीक-ठीक तारीख़ तो नहीं पता लेकिन इतिहास की किताबों से यह बात साबित है कि यह काम चौथी सदी हिजरी ही में हुआ था। यह डिपार्टमेंट अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर के लिए बनाया गया था जिसकी बुनियाद दीन था और यह हुकूमत ही का एक डिपार्टमेंट था। यही नहीं बल्कि हुकूमतों ने दूसरे और भी डिपार्टमेंट बनाए थे।

बहरहाल दायरा-ए-हिस्बा या एहतेसाब (Department of Guidance) दरअसल वही अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर ही था जिसपर दीनी रंग चढ़ा हुआ था। मोहतसेबीन यानी इस डिपार्टमेंट में काम करने वाले जो लोग होते थे उनके लिए आलिम होने, जानकार होने, दीनदार होने और अमानतदार होने के साथ-साथ लोगों के बीच एक तरह के एहतेराम व इज़्ज़त वाला होना भी ज़रूरी होता था।

वैसे अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर के बारे में

'दायरा-ए-हिस्बा' या 'एहतेसाब' नाम की यह शब्दावली (Terminology) दरअसल बनाई गई है। इस को उसी ज़माने से अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर के लिए इस्तेमाल किया जाता रहा है वरना क़ुरआन या हदीस में ऐसा कोई शब्द अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर के बारे में नहीं मिलता है। न ही शियों की हदीसों में ऐसा कोई शब्द मिलता है और न अहले सुन्नत की हदीसों में।

आगे चलकर उलमा ने भी अपनी किताबों में यही शब्द इस्तेमाल करना शुरू कर दिया। शायद उलमा में सब से पहले इस शब्द को शहीदे अव्वल मोहम्मद बिन मक्की ने अपनी किताब ''दुरूस'' में इस्तेमाल किया है। बाद में यह शब्द इतना ज़्यादा इस्तेमाल होने लगा कि इसे अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर के मायनी में ही समझा जाने लगा।

बहरहाल दायरा-ए-हिस्बा या एहतेसाब (Department of Guidance) हुकूमत से जुड़ा एक डिपार्टमेंट था जिसकी वजह से यह पूरी तरह इस्लामी नहीं था। हाँ! इतना ज़रूर था कि लोगों की मर्ज़ी की बुनियाद पर इसे बनाया गया था इसलिए इस के बहुत ज़्यादा फ़ाएदे भी थे। यहाँ तक कि इस बारे में बहुत अच्छी-अच्छी किताबें भी लिखी गई हैं।

अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर ज़रा और बड़ी चीज़ है

हम जान चुके हैं कि गाइडेंस डिपार्टमेंट उस ज़माने में हुकूमत से जुड़ी हुई एक चीज़ थी और जो काम हुकूमतें देती थीं यह डिपार्टमेंट उन्हें पूरा करता भी था लेकिन इसका यह मतलब यह नहीं था कि अब इस डिपार्टमेंट के बाद लोग निजी तौर पर अपनी कोई ज़िम्मेदारी नहीं समझते थे। जैसा कि ऊपर भी कहा गया है कि अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर के कई दर्जे (Stages) हैं। जहाँ ज़ोर-ज़बरदस्ती, मारने-पीटने या क़त्ल कर देने की नौबत आ जाएं वहाँ से आम लोगों की ज़िम्मेदारी ख़त्म हो जाती है और यहाँ से हाकिमे शरई (Religious Authority) की ज़िम्मेदारी शुरू हो जाती

है। वरना ज़बान से कहने, नसीहत करने, बताने, रिश्ता तोड़ लेने और बात करना बंद कर देने जैसी चीज़ें तो एक-एक मुसलमान की ज़िम्मेदारी है। पुराने ज़माने में हर मुसलमान ख़ूब अच्छी तरह से जानता था कि उसकी निजी ज़िम्मेदारी क्या है और समाज में सुधार लाने के लिए अपनी ताक़त और क़ाबिलियत (Qualification) के लिहाज़ से उसे किस हद तक जाना है।

सोशल रिफ़ार्म के बारे में पिछले मुसलमानों की सोच

पिछले ज़माने में उलमा काफ़ी बड़ी सोच वाले होते थे। अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर को उन्होंने सिर्फ़ दो चार इबादतों में ही नहीं बांध रखा था बल्कि उनका मानना था कि यह वह बुनियादी (Fundamental) क़ानून है जिसके ज़रिए हर तरह का समाजी-अख़लाक़ी (Socio-Moral) रिफ़ार्म किया जा सकता है।

इस्लाम ने किस चीज़ पर ज़ोर दिया है?

इस्लाम ने अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर पर बहुत ज़ोर दिया है, इस बारे में बहुत नसीहत की है और इसके बहुत ज़्यादा फ़ाएदे बताए हैं। सूरए तौबा की आयत/71 में हैः

> मोमिन मर्द और मोमिन औरतें, आपस में सब एक-दूसरे के वली (Patron) व मददगार हैं। यह सब एक-दूसरे को अच्छाईयों का हुक्म देते हैं और बुराईयों से रोकते हैं, नमाज़ क़ायम करते हैं, ज़कात देते हैं और अल्लाह व रसूल के हुक्म पर अमल करते हैं। यही वह लोग हैं जिन पर जल्दी ही ख़ुदा रहमत नाज़िल करेगा।

इस आयत में कुछ बहुत ख़ास चीज़ों की तरफ़ इशारा किया गया है जैसे ईमान का एक फ़ाएदा यह बताया गया है कि इस से एक-दूसरे से मोहब्बत पैदा होती है। लेकिन शर्त यह है

कि ईमान असली व सच्चा हो, न कि देखा-देखी और सुना-सुनाया ईमान।

ऐसी मोहब्बत का फ़ाएदा यह है कि जिनके बीच भी यह मोहब्बत पाई जाएगी वह एक दूसरे के अंदर अच्छाईयाँ पैदा करने की कोशिश करेंगे और एक-दूसरे को बुराईयों से भी रोकेंगे और इसी को अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर कहते हैं।

अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर का फ़ाएदा यह होगा कि लोग इबादत और ख़ुदा के सामने अपना सर झुका देने के लिए उठ खड़े होंगे। नमाज़ पढ़ने, ग़रीबों की मदद करने, कमज़ोरों का हाथ थामने, एक-दूसरे का साथ देने, ख़ुम्स निकालने, ज़कात देने और समाज को सुधारने के लिए उठ खड़े होंगे। मतलब यह है कि अगर समाज में हर तरफ़ अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर हो रहा होगा तो समाज का हर आदमी ख़ुदा व रसूल के बताए रास्ते पर चलने और दीन के हर हुक्म को मानने पर आसानी से तैयार हो जाएगा। फिर इस सब का रिज़ल्ट यह होगा कि ख़ुदा की कभी ख़त्म न होने वाली रहमत हर तरफ़ फैल जाएगी। इस तरह पूरा समाज एक बेहतरीन समाज बन जाएगा।

एक हदीस में अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर के बारे में इमाम जाफ़र सादिक़[अ०] फ़रमाते हैंः

> इस उसूल (सिद्धांत) की वजह से दूसरे सारे दीनी हुक्म ज़िन्दा होते हैं, रास्तों में अम्न (Peace) पैदा हो जाता है, रोज़ी हलाल हो जाती है, हर एक का हक़ उसे मिल जाता है, ज़मीन उपजाऊ हो जाती है, दुश्मनों से बदला लिया जाता है और हर चीज़ अपने रास्ते पर लग जाती है।[1]

अगर हम अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर के बारे में क़ुरआन की आयतों व हदीसों में हद से ज़्यादा दिए गए ज़ोर को देखें, फिर पिछले ज़मानों में मुसलमानों ने इस पर अमल करके जो फ़ाएदा उठाया है उसे देखें और उसके बाद आज के ज़माने में अपने बीच समाज की हालत को देखें तो हम अफ़सोस किए बिना नहीं रह सकते।

जब इंसान पिछले ज़माने से आज के ज़माने का मुक़ाबला

करता है तो अपने आप उसकी समझ में आ जाता है कि हम इस बीच कितने पीछे चले गए हैं!

आज मुसलमानों के पास अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर के लिए पहले जैसी कोई ताक़त नहीं है। इस से ज़्यादा अफ़सोस करने की बात यह है कि अब तो किसी के दिमाग़ में इस तरह की बातें आती भी नहीं हैं। उस ज़माने में जिन चीज़ों के ज़रिए अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर किया जाता था आज उन चीज़ों को दीन का हिस्सा ही नहीं समझा जाता। अगर कोई अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर के बारे में सोच भी ले तब भी उसके दिमाग़ में यह बात तो आती ही नहीं है कि उस ज़माने का सोशल रिफ़ार्म भी अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर ही की वजह से था। यानी आज अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर के मायनी सिकुड़ कर छोटे हो गए हैं जो उस ज़माने में काफ़ी फैले हुए थे। आज अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर को सिर्फ़ कुछ इबादतों में ही समेट दिया गया है। अफ़सोस की बात तो यह है कि जो कुछ बचा है उस पर भी अमल नहीं किया जाता।

अगर इस्लाम में अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर का दायरा (Circle) इतना फैला हुआ न होता तो इमाम जाफ़र सादिक़[अ०] हम से न कहतेः

> इस उसूल (सिद्धांत) की वजह से दूसरे सारे दीनी अहकाम ज़िन्दा होते हैं, रास्तों में अम्न (Peace) पैदा हो जाता है, रोज़ी हलाल हो जाती है, जिसका हक़ होता है वह उस तक पहुँचा दिया जाता है, ज़मीन उपजाऊ हो जाती है, दुश्मनों से बदला लिया जाता है और हर चीज़ अपने रास्ते पर लग जाती है।[1]

अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर के बारे में आज हमारे दिमाग़ में जो यह छोटी सी सोच पाई जाती है इस पर जितना भी अमल कर लिया जाए तब भी इस से पिछले ज़माने वाला फ़ाएदा और पहला वाला असर नहीं हो सकता।

लोग इस बारे में ध्यान क्यों नहीं देते?

आज अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर के बारे में लोगों की सोच काफ़ी छोटी हो गई है और लोग अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर के ज़रिए सोशल रिफ़ार्म के बारे में सोचते भी नहीं हैं, जिसका रिज़ल्ट यह है कि अब अगर कोई शहर की सफ़ाई के लिए, मेंहगाई को रोकने के लिए, पार्कों के रख-रखाव वग़ैरा जैसी चीज़ों के लिए कोई अच्छा काम करना भी चाहे तो किसी एक के भी दिमाग़ में यह बात नहीं आएगी कि यह भी कोई दीनी काम हो सकता है या यहाँ तक भी दीन के हाथ पहुँच सकते हैं क्योंकि कोई इस बात का एहसास ही नहीं कर पाता कि दीनी लिहाज़ से यह भी हमारी ही एक ज़िम्मदारी है। लोग आज इसीलिए इन कामों को दीनी काम नहीं समझ पाते क्योंकि इन कामों को अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर से बाहर निकाल दिया गया है।

पिछले सौ साल में क्या हुआ

यह तो अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर के बारे में पुराने ज़मानों की बातें थीं। अब आइए! देखते हैं कि पिछले सौ-डेढ़ सौ सालों में क्या हुआ है? वैसे इस बारे में किताबों में बहुत डिटेल में कुछ नहीं लिखा गया है। जो कुछ है वह वही है जो हम सभी ने अपने बुज़ुर्गों व बूढ़ों से सुना है।

जैसा कि ऊपर भी कहा गया है कि जब हम यह देखते हैं कि क़ुरआन व हदीस ने अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर पर कितना ज़ोर दिया है या पिछले इतिहास को देखते हैं तो हम अफ़सोस किए बिना नहीं रह पाते कि ऐसा क्या हुआ कि आज अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर की शक्ल में इस्लाम के दिए हुए इतने बुनियादी (Fundamental) फ़ार्मूले को नहीं अपनाया जा रहा है। वैसे इन पिछले कुछ सालों में अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर की वजह से पैदा होने वाले भयानक व ख़तरनाक हालात को जब इंसान देखता है तो यही कहता है कि ऐ अल्लाह! तेरा शुक्र है कि अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर का ज़माना ख़त्म हो गया और जो कुछ अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर बचा है, काश! वह भी ख़त्म

हो जाए क्योंकि आज हमारे समाज में अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर के जो मायनी पैदा हो गए हैं उसके बाद तो यही कहना ठीक है कि काश! अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर बिल्कुल ही ख़त्म हो जाए।

एक ऐसा फ़ार्मूला जिसे भुला दिया गया

मशहूर इस्लामी इतिहासकार मोहम्मद इब्राहीम आयती ने अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर को एक ऐसा दीनी हुक्म गिनाया है जिसे सिरे से भुला ही दिया गया है। और यह बात बिल्कुल सही है लेकिन इस पर भी ध्यान देना ज़रूरी है कि आख़िर ऐसा क्या हुआ कि हम इस दीनी हुक्म को सिरे से भूल ही गए?

इस बारे में ज़रूरी है कि बाहरी फ़ैक्टर्स को ढूँढने से पहले हज़रत अली[अ०] की इस मशहूर हदीस को भी ध्यान में रखना चाहिएः

> तुम्हारी बीमारी का इलाज भी तुम्हारे ही अंदर है
> और तुम्हारी बीमारी भी तुम्हारे ही अंदर है।

इसका मतलब यह हुआ कि हम ही ने अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर को ऐसा बना दिया है कि लोग इस हुक्म से भागने लगे हैं और आज यह वक़्त भी आ गया है कि अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर को सिरे से भुला ही दिया गया है।

ऊपर भी कहा जा चुका है कि अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर पर अमल करने के लिए इस्लामी लिहाज़ से कुछ शर्तें हैं जिन पर चलना ज़रूरी है। इसकी पहली शर्त अच्छी नियत और ख़ुलूस (Purity) का होना है। हम सिर्फ़ उन बुराईयों को रोकने के लिए आगे बढ़ सकते हैं जो खुल्लम-खुल्ला की जाती हैं वरना हमें लोगों की निजी ज़िंदगी में घुसने का बिल्कुल हक़ नहीं है लेकिन हुआ यह कि इन्हीं कुछ सालों में ऐसे कुछ लोगों ने जिनका नेचर ही दूसरों की निजी ज़िंदगी में झांकना था और जो दूसरों से अपना बदला लेना चाहते थे उन्होंने अपने इस काम के लिए अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर नाम के इसी दीनी हुक्म को अपने लिए सर्टिफ़िकेट बना लिया और फिर न जाने किस-किस तरह

लोगों को परेशान किया। इसी अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर के नाम पर न जाने कौन-कौन से ग़लत काम कर दिए गए? यह सारी वह बातें हैं जो हम सभी ने देखी और सुनी हैं।

यह ईरान के एक मशहूर शहर इस्फ़ेहान की बात है। कहते हैं कि मरहूम आयतुल्लाह मोहम्मद तक़ी नजफ़ी इस्फ़ेहानी के ज़माने में एक दिन मदरसे के कुछ दीनी स्टूडेंट्स उनके घर उन से मिलने आए। वैसे वह सिर्फ़ नाम के दीनी स्टूडेंट्स थे वरना जो सच में दीनी स्टूडेंट होता है वह इस तरह के काम नहीं करता है। बहरहाल उन स्टूडेंट्स के हाथों में एक टूटा हुआ ढोल भी था। आयतुल्लाह नजफ़ी ने उन से पूछा कि क्या बात है? कहाँ से आ रहे हो? यह तुम्हारे हाथों में क्या है? कहने लगे कि हम तो अपने मदरसे ही में थे कि हमें ख़बर मिली कि मदरसे के दूसरी तरफ़ किसी के यहाँ शादी हो रही है और ढोल वग़ैरा बजाया जा रहा है। हम लोग फ़ौरन ही मदरसे की छत से दूसरी छतों पर कूदते-फलांगते उस मकान की छत से होते हुए उस मकान तक पहुँच गए। घर में घुसे और घर वालों को ख़ूब मार-पीट कर उनका ढोल भी छीन लिया। उन में से एक लड़का बोला कि मैंने आगे बढ़कर दुल्हन के मुँह पर एक ज़बरदस्त तमाचा भी मार दिया। आयतुल्लाह नजफ़ी ने कहा कि क्या इसी को बुराईयों से रोकना कहते हैं जो तुम लोगों ने किया है? तुम उन लोगों को एक बुराई से रोकने गए थे लेकिन ख़ुद तुम ने कई बुराईयाँ कर डालीं। पहली बात तो यह कि वहाँ शादी हो रही थी। दूसरे यह कि तुम्हें किसने हक़ दिया था कि तुम उनके घर में झांकते फिरो? तीसरी ग़लती यह कि लोगों की छतों के ऊपर से गुज़रने का हक़ तुम्हें कहाँ से मिला? चौथी ग़लती यह कि तुम ने किसकी इजाज़त से वहाँ जाकर मार-पिटाई की?

इस तरह की बातें पहले बहुत पाई जाती थीं। अच्छी बात यह है कि अब ऐसा नहीं होता लेकिन फिर भी यह बात समझने और जानने की है कि आज भी जब बहुत सी बुराईयों से रोका जाता है तो ऐसा अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर वाले हुक्म की बुनियाद पर नहीं होता। इतना ही नहीं बल्कि इसी बीच ऐसे कई ग़लत काम भी हो जाते हैं कि ख़ुद उन्हें ही रोकने की ज़रूरत होती है।

नसीहत या मार-पिटाई

हमारे बीच अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर को लागू करते वक़्त दो बातों पर ज़्यादा ध्यान दिया जाता हैः एक ज़बान से कहना और दूसरे ज़ोर-ज़बरदस्ती करना। यानी अगर कहने के बाद भी किसी ने हमारी बात नहीं मानी तो फिर ज़बरदस्ती अपनी बात मनवाई जाए। दूसरे शब्दों में यूँ कहा जाए कि हम पहले नसीहत करते हैं और अगर नसीहत से फ़ाएदा नहीं हुआ तो फिर अगर हमारे पास ताक़त हुई तो ताक़त का इस्तेमाल करते हैं। इन दोनों चीज़ों को हम अच्छी तरह पहचानते हैं।

वैसे इस बात में भी कोई शक नहीं है कि ज़बान से नसीहत करना भी ज़रूरी है और इसी तरह अपनी जगह पर ताक़त का इस्तेमाल भी एक ख़ास ज़रिया है लेकिन अब सवाल यह है कि अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर करने के लिए क्या यही दो चीज़ें हैं और कुछ नहीं है ? क्या दूसरा और कोई रास्ता नहीं है ?

ख़ुलूस व अमल का रास्ता

हदीसों में लिखा है कि अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर के तीन दर्जे (Stages) हैंः पहले दिल, फिर ज़बान और फिर हाथ।

हम लोग आमतौर पर दिल वाली स्टेज में अच्छी नियत, ख़ुलूस और दूसरे मुसलमानों की भलाई के बारे में सोचने के बजाए बे वजह के जोश, जज़्बात (Emotions) और ग़ुस्से से काम लेते हैं। इसी तरह जब ज़बान की स्टेज आती है तो हम अपनी बात को अच्छी तरह समझाने के बजाए सामने वाले को हुक्म देने लगते हैं। इसके बाद जब हाथ यानी ताक़त की स्टेज आती है तो ख़ुद अमल करके दिखाने के बजाए ताक़त और ज़ोर-ज़बरदस्ती से काम लेने लगते हैं।

अगर बात को समेट कर कहा जाए तो यूँ समझिए कि हम ज़्यादा से ज़्यादा कह देने, लिख देने, स्पीच दे देने और किताबें लिख देने को ही सब कुछ समझ लेते हैं कि बस इतना

ही काफ़ी है और अब किसी दूसरी चीज़ की ज़रूरत नहीं है।

एक हदीस में हैः

> लोगों को बिना ज़बान के दीन की तरफ़ बुलाओ।[2]

इस हदीस का मतलब यह है कि अगर लोगों को अपने दीन की तरफ़ बुलाना चाहते हो तो उन्हें ज़बान के बजाए अपने अमल (Practical Life) के ज़रिए बुलाओ। यानी ऐसे ज़िंदगी गुज़ारो कि लोग अपने आप तुम्हारे दीन की तरफ़ दौड़े चले आएं।

एक और हदीस भी है जिसको उलमा अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर के सिलसिले में इस्तेमाल करते हैं, इस हदीस में इस तरह आया हैः

> ऐसा नहीं है कि ख़ुदा ने तुम्हें इस बात की इजाज़त दे दी हो कि अपनी ज़बान को तो खुली रखो मगर हाथों को बांध लो बल्कि अगर खुले हुए हैं तो दोनों एक साथ खुले हुए हों और अगर बंधे हुए हों तब भी दोनों एक साथ ही बंधे हों।[3]

इस हदीस का सीधा सा मतलब यह है कि अगर इंसान ख़ुद अमल नहीं कर रहा है तो उसकी ज़बान का भी बंद ही रहना अच्छा है।

अब हम यहाँ पर मुसलमानों के एक बहुत बड़े फ़क़ीह व आलिम शेख़ अबू जाफ़र तूसी का वह नज़रिया (Point of view) बयान कर रहे हैं जो उन्होंने इस हदीस या इस जैसी हदीसों के बारे में अपनी किताब ''अल-निहाया'' में लिखा है। यह किताब हमारी बहुत ही ख़ास किताबों में से है।

शेख़ तूसी लिखते हैंः

> अच्छाईयों की तरफ़ हाथ से भी बुलाया जा सकता है और ज़बान से भी। जहाँ तक हाथ से अच्छाईयों की तरफ़ बुलाने की बात है तो इस का मतलब यह है कि ख़ुद अच्छाई की तरफ़ बुलाने वाला इंसान भी अच्छे काम कर रहा हो और अमली तौर पर (Practically) बुरे कामों से दूर रहता हो ताकि उसे देखकर दूसरे भी
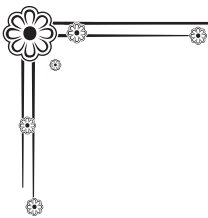
अच्छाईयों को अपना लें और बुराईयों से बच जाएं।

ज़बान से अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर करने का मतलब यह है कि लोगों को अच्छाईयों की तरफ़ बुलाया जाए और उन्हें यह ख़ुशख़बरी सुनाई जाए कि इस रास्ते पर चलने को दीन पसंद करता है और क़यामत में भी इस का बहुत अच्छा बदला दिया जाएगा। साथ ही उन्हें ख़ुदा के अज़ाब से भी डराया जाए।

हाथ व ज़बान से अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर करने का एक तरीक़ा यह भी है कि सख़्ती की जाए जिसमें सामने वाले को चोट भी लग सकती है और वह मर भी सकता है लेकिन अगर यह नौबत आ जाए तो शरई हुकूमत (इस्लामी हुकूमत) के हुक्म के बिना ऐसा करना जायज़ नहीं है।[(4)]

एक दूसरे बहुत बड़े आलिम आयतुल्लाह शेख़ मोहम्मद हसन नजफ़ी जो कि साहिबे जवाहर के नाम से मशहूर हैं, वह शेख़ तूसी के इस नज़रिए (Theory) को बयान करने के बाद लिखते हैंः

जी हाँ! अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर करने का, ख़ासकर उलमा के लिए, सबसे बेहतरीन रास्ता यह है कि इंसान ख़ुद अमल करके दिखाए, नेक कामों में, चाहे वाजिब काम हों या मुस्तहब, सबसे आगे रहे, बुराईयों का लिबास अपने बदन से उतार फैंके, अपने आप को अच्छे अख़लाक़ से सजा-संवार ले और बुरी बातों को अपने अंदर से निकाल दे।

अगर अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर को अच्छे तरीक़े से किया जाए तो यह एक ऐसा असरदार हथियार है जो कभी ख़ाली नहीं जा सकता, जो अपना असर दिखाता ही दिखाता है, ख़ासकर अगर अच्छी ज़बान के साथ मेहरबानी भरे अंदाज़ में नसीहत की जाए तो इसका बहुत
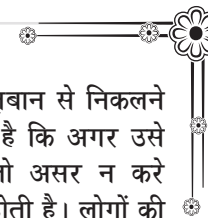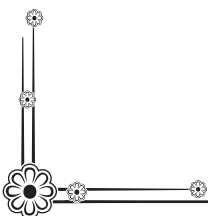
ज़्यादा असर होता है क्योंकि ज़बान से निकलने वाली ऐसी कोई भी बात नहीं है कि अगर उसे अच्छे अंदाज़ में कहा जाए तो असर न करे बल्कि यह तो हर दर्द की दवा होती है। लोगों की रूह का इलाज बदन की दूसरी हर बीमारी से ज़्यादा सख़्त होता है। आख़िर में ख़ुदा से दुआ है कि वह इस मरहले (Stage) तक पहुँचने में हमारी मदद फ़रमाए!

हज़रत अली[अ०] फ़रमाते हैंः

अगर कोई लोगों का सरदार बनना चाहता है और उन्हें अपने साथ किसी रास्ते पर लेकर चलना चाहता है तो उसे चाहिए कि दूसरों को कोई बात सिखाने से पहले ख़ुद अपने आप को वह बात सिखाए और इस से पहले कि दूसरों को अपनी ज़बान के ज़रिए रास्ता दिखाए उसे चाहिए कि पहले अच्छे अख़लाक़ (Morals) व अच्छी बातों के ज़रिए ख़ुद अपने आप को उस रास्ते पर चलने के लिए तैयार करे। जो आदमी ख़ुद अपने आप को सिखाता है और अच्छे अख़लाक़ से अपने आप को सजाता-संवारता है वह उस आदमी से कहीं बेहतर है जो सिर्फ़ दूसरों को सिखाता है और रास्ता दिखाता है।[(5)]

ज़बान व कान से ज़्यादा उम्मीद लगाना

हमारे समाज में यह भी एक बहुत बड़ी ग़लती पाई जाती है कि हम बोलने, लिखने, स्पीच देने, आर्टिकिल व किताबें लिखने को ही सब कुछ समझ लेते हैं बल्कि ख़ुलासा करके यूँ कहा जाए कि हम ज़बान और ज़बानी बातों को बहुत ज़्यादा अहमियत (महत्व) देते हैं और इसी लिहाज़ से उम्मीद भी लगाते हैं। सच तो यह है कि हम अपनी ज़बान से जादू होने की उम्मीद लगाए रहते हैं। इस बात में कोई शक नहीं है कि कहना व लिखना अगर उसी तरह से हो जिस तरह से क़ुरआन ने बोलने व कहने का हुक्म दिया है यानी नसीहत हो,
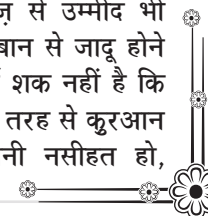
मेहरबानी भरा अंदाज़ हो, सच्चाई व हक़ीक़त को खोलने वाला हो और सिर्फ़ आर्डर देने वाला अंदाज़ न हो तो यह बिल्कुल सही चीज़ है और अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर की एक ज़रूरी शर्त है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि यही असली शर्त है और अब इसके बाद किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं है। साथ ही हमें जितनी उम्मीद अपनी ज़बान से होती है उतनी ही उम्मीद सुनने वालों के कानों से भी होती है कि वह हमारी हर बात को ध्यान से सुनें। इस तरह होता यह है कि हम सिर्फ़ ज़बान व कान से ही सारा काम कर लेना चाहते हैं मगर जब ऐसा हो नहीं पाता है तो हमें तकलीफ़ होती है जिस पर हम चीख़ते-चिल्लाते भी हैं।

ऐसा हर ज़माने में होता आया है और हमें इस बात का एहसास भी नहीं होता कि हम ग़लती कर रहे हैं। अगर हमें अपनी ज़बान और दूसरों के कानों से इतनी ही उम्मीद है तो चलिए ठीक है लेकिन कभी अपनी आँखों व हाथों से भी तो कुछ काम लें, कुछ करके भी तो दिखाएं, एक अच्छी ज़िंदगी भी तो गुज़ारें जिसे दूसरे अपनी आँखों से देखकर ख़ुद ही सब कुछ सीख लें और कुछ कहने की ज़रूरत ही न पड़े। कभी ऐसा भी तो करके देखा जाए और बेचारी अपनी ज़बान व कानों को ज़रा आराम भी दिया जाए।

सामूहिक काम (Collective Practice)

अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर करते वक़्त जहाँ हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि सिर्फ़ ज़बान से कहने के बजाए अपने अमल व ज़िंदगी से भी मिसाल (Ideal) पेश करें वहीं इस बात पर भी ध्यान रखना है कि जहाँ तक अमल (Practice) की बात है वह भी अगर निजी तौर पर होगा तो उसका भी कोई बहुत ख़ास फ़ाएदा नहीं होगा, ख़ासकर हमारी आज की इस दुनिया में। हमारी समाजी ज़िंदगी में एक मुश्किल यह भी है कि वह लोग जो ख़ुद अमल करके अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर करना चाहते हैं वह भी निजी ज़िंदगी से बाहर निकल कर समाजी ज़िंदगी की तरफ़ नहीं आ पाते और अकेले की चलते चले जाते हैं। इस निजी ज़िंदगी का कोई

फ़ाएदा नहीं है। किसी एक इंसान की अच्छी सोच से कुछ भला नहीं हो सकता। अगर कुछ हो सकता है तो सिर्फ़ और सिर्फ़ तभी हो सकता है जब पूरी सोसाइटी एक सोच और आपसी तालमेल के साथ आगे बढ़ रही हो।

तर्क (Logic) या सिर्फ़ इबादत

एक और बहुत ख़ास बात यह है कि अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर करते वक़्त हम तर्क (Logic) का इस्तेमाल नहीं करते हैं जबकि असली बात यह है कि कोई भी काम हो उसे करने का अपना एक ख़ास ढंग होता है और वही उस काम की चाबी होती है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि जिस चीज़ को हम अच्छी तरह पहचानते हैं और जिसे हद से ज़्यादा अहमियत (महत्व) देते हैं वह ज़बान है न कि अमल (Practice)। और फिर अगर अमल तक पहुँच भी गए तो निजी तौर पर ही जुटे रहते हैं, इससे आगे नहीं बढ़ पाते।

बहरहाल इस बीच जिस चीज़ को सिरे ही से भुला दिया गया है वह है अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर करते वक़्त तर्क (Logic) का इस्तेमाल करना। यानी अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर करते वक़्त अमली (Practically) तौर पर इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि किसी भी नेक काम में कौन सा तरीक़ा अपनाया जाए जो लोगों को उस अच्छे काम की तरफ़ अपने आप खींच ले और साथ ही बुरे काम से दूर भी कर दे।

कुछ दिनों पहले एक न्युज़ पेपर में एक आर्टिकिल छपा था जिसका टाइटिल थाः नसीहतों का ढेर। इस आर्टिकिल में लिखने वाले ने पहले तो यह बात कही थी कि हमारे मुल्क में नसीहत पर नसीहतें की जाती हैं लेकिन उनका कोई असर नहीं होता। इसके बाद लिखा कि कुछ सालों पहले अमेरिका के फिलेडेलफ़िया स्टेट के एक शहर में औरतों को जुए की लत हो गई थी। पहले तो चर्च के फ़ादर्स, सोशल लीडर्स, न्युज़ पेपर्स और स्कॉलर्स ने जुए की बुराईयाँ गिनाते हुए, ख़ासकर औरतों के लिए, जो कुछ कहना था कहा और जो कुछ लिखना था वह

लिखा लेकिन किसी पर भी किसी बात का कोई असर नहीं हुआ। जब शहर के मेयर ने अपने यहाँ की औरतों की यह हालत देखी तो उसने एक तरकीब सोची। उसने अपने शहर में औरतों को बिज़ी रखने के लिए आर्ट, लिट्रेचर व क्राफ़्ट से जुड़े सेंटर्स खोल दिए जहाँ औरतों को तरह-तरह के काम सिखाए जाते थे, जागरूक और किसी भी काम में माहिर (Expert) औरतों को गिफ़्ट दिए जाते थे, मोटे व सेहतमंद बच्चों की नुमाइश की जाती थी... इस तरह की बहुत सी दिल को लुभाने वाली चीज़ें वहाँ जमा कर दी गई थीं जिसका असर यह हुआ कि धीरे-धीरे औरतों ने वहाँ आना शुरू कर दिया और दो-तीन साल ही में औरतों के अंदर से जुए की लत अपने आप ख़त्म हो गई।

इसे कहते हैं अमली तदबीर (Practical solution)। ऊपर जो बात कही गई थी कि अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर करते वक़्त तर्क (Logic) का भी इस्तेमाल किया जाए उसका मतलब यही है। अगर उस शहर के लोग भी चर्च वालों की नसीहतों व न्युज़ पेपर्स के आर्टिकिल्स वग़ैरा पर ही रूक जाते तो फिर उन्हें हमेशा के लिए हाथ पर हाथ रखकर बैठ जाना चाहिए था लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया बल्कि कुछ ऐसा करके दिखाया कि औरतें जुए की लत को छोड़कर दूसरे कामों में लग गईं।

पुराने ज़माने से ही हमारे बीच मशहूर है कि औरतें ज़्यादा ग़ीबत (पीठ पीछे बुराई) करती हैं। आज भी ऐसा ही है। पुराने ज़माने की औरतें जिन में से कुछ आज भी हैं अगर वह नमाज़-रोज़े की पाबंद भी हों और दूसरी दीनी बातों पर भी अमल करती हों तब भी वह ख़ूब ग़ीबत करती हैं। क्यों? इसकी वजह क्या है? इसकी वजह यह है कि पुराने ज़माने में हमारे घरों में जो कल्चर पाया जाता था उस में अगर बेचारी औरतें ग़ीबत न करतीं तो फिर दूसरा कौन सा काम करतीं? न वह किसी को पढ़ा सकती थीं, न किसी को सिखा सकती थीं और न ही दूसरा कोई और काम कर सकती थीं। घर के काम के बाद उनके पास दूसरा कोई काम होता ही नहीं था। अगर कोई काम बचता था तो सिर्फ़ यह कि सारे काम समेट कर एक जगह जमा हो जाएं और फिर दूसरों की ग़ीबत व बुराई करने

लगें। जिस तरह हमारे बदन को खाने के लिए कुछ न कुछ चाहिए उसी तरह हमारी रूह को भी कुछ न कुछ तो ज़रूर चाहिए। जब उसे सही चीज़ खाने को नहीं मिल पाती तो वह मरे हुए इंसान का गोश्त ही खाने लगती है।

क़ुरआन मजीद ने ग़ीबत के बारे में यही तो कहा हैः

> क्या तुम में से कोई अपने मरे हुए भाई का गोश्त खाना चाहेगा?[6]

हदीस में भी ग़ीबत के बारे कुछ ऐसा ही हैः

> ग़ीबत जहन्नम के कुत्तों का खाना है।[7]

अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर के बारे में हम ने अभी तक जो कुछ किया है वह नसीहतों व ज़बानी बातों से बढ़कर कछ भी नहीं है। हम ने इस बारे में अभी तक तर्क और इसका अमली हल (Practical Solution) तलाश ही नहीं किया है। जिसका रिज़ल्ट बहरहाल यही है कि इतना सब कुछ कहा व सुना जा रहा है लेकिन असर कुछ भी नहीं है। अब इसके बजाए कि हम ख़ुद अपने आप को या अपने काम करने के तरीक़े को बुरा कहते, बेचारी औरतों को बुरा कहते रहते हैं कि वह ऐसी हैं, वह वैसी हैं।

इसी तरह हमारे आज के इस कल्चर में फ़ैशन की दीवानी और माडर्न लड़कियों व औरतों को भी एक बीमारी लग गई है और यह बीमारी है घरों को छोड़कर इधर-उधर मारी-मारी फिरना, फ़ैशन करना और फिर उसे दूसरों को दिखाना, फ़ुज़ूल ख़र्ची करना और घूमना-फिरना। हम इस बीमारी का भी सिर्फ़ नसीहतों और ज़बानी बातों से इलाज करना चाहते हैं जो कभी हो नहीं सकता। अगर हमें ख़ुदा की मदद मिल जाए और हम अमली सोच (Practical approach) के साथ आगे बढ़ें और अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर करते वक़्त तर्क का इस्तेमाल करें तो इस तरह की सारी मुश्किलें आसानी से और बड़ी जल्दी हल हो सकती हैं।

जिस तर्क व Practical approach की हम बात कर रहे हैं अगर यह देखना है कि इस्लाम ने अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर के बारे में इस चीज़ पर कितना ज़ोर दिया

है तो नीचे लिखी इस बात की तरफ़ ध्यान दीजिएः

उलमा ने हदीसों से यह मतलब निकाला है कि अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर की शर्तों में से एक शर्त एहतेमाले असर (असर होने की उम्मीद) है।

एहतेमाले असर यानी Possibility of Result। यानी इंसान जो काम करने जा रहा है उसका कोई रिज़ल्ट भी निकलेगा या नहीं।

हर काम का अपना एक फ़ाएदा होता है, जैसे नमाज़ का, रोज़े का और इसी तरह अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर का भी। इस हुक्म पर अमल करने की जहाँ तक बात है तो देखा जाएगा कि सामने वाले पर हमारी बात को सुनकर या हमारे अमल (Action) को देखकर कोई असर हो रहा है या नहीं।

इस तरह एहतेमाले असर यानी Possibility of Result का मतलब यह हुआ कि हम इस बात का एहतेमाल (Possibility) लगाई जाए कि शरीअत में इस हुक्म की बुनियाद हमारी बात या हमारे अमल पर रखी गई है।

अब सवाल यह है कि नमाज़ के बारे में ऐसा क्यों नहीं कहा गया कि अगर नमाज़ पढ़ने से तुम्हारे अंदर नमाज़ से होने वाला असर पैदा हो रहा हो तो नमाज़ पढ़ना और अगर असर पैदा न हो रहा हो तो न पढ़ना? इसी तरह वुज़ू, रोज़े, हज और दूसरी इबादतों के बारे में भी यही सवाल पैदा हो सकता है।

ऐसा इसलिए है क्योंकि यह सब ख़ालिस (Pure) इबादतें हैं। हम अपनी अक़्ल व समझ के ज़रिए इस बात को नहीं समझ सकते कि इन इबादतों को करें कि न करें या किस तरह करें लेकिन अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर वाले मामले में ऐसा नहीं है। यह एक ऐसा काम है जिसके हर पहलू (Angle) को ख़ुदा ने हमारी समझ व अक़्ल के कंट्रोल में दे दिया है कि कहाँ करना है, कैसे करना है, किन हालात में करना है, किसको करना है, असर होने की उम्मीद हो तो क्या करना है और अगर असर होने की उम्मीद न हो तो क्या करना है...।

इस से पहले भी मशहूर आलिम आयतुल्लाह शेख़

मोहम्मद हसन नजफ़ी (साहिबे जवाहर) ने जो कुछ कहा है वह हम ने लिखा था कि किसी भी काम में सब से ख़ास चीज़ यह है कि इस बात का हमेशा ध्यान रखा जाना चाहिए कि वह काम कैसे किया जाए, किस शक्ल में किया जाए, किस ज़रिए और किस अंदाज़ से किया जाए कि हम अपने मक़सद (Target) तक पहुँच जाएं।

अगर हम इस बात को अच्छी तरह से समझ जाएं तो फिर अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर से जुड़ी हदीसों के बारे में हमारी सोच ही बदल जाएगी।

बहरहाल अब तक की बातों का निचौड़ यह है कि दीन ने हमें अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर करने का जो हुक्म दिया है और जिसको हम भुला बैठे हैं, हमें चाहिए कि एक बार फिर अपने अंदर हिम्मत पैदा करें और एक ऐसा सिस्टम बनाएं जो अमली सोच (Practical Approach) वाला हो, सिर्फ़ ज़बानी न हो और जिसमें सोसाइटी के सभी लोग एक ताल-मेल के साथ आगे बढ़ें, न कि हर एक का अपना एक अलग रास्ता हो। साथ ही इस सिस्टम को साइंटिफ़िक व तार्किक सोच (Logical Approach) वाला भी होना चाहिए। अगर यह सब हो जाए तभी हम अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर के बारे में किसी अच्छे रिज़ल्ट की उम्मीद कर सकते हैं।

आख़िर में एक बात और कि जब भी अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर का नाम लिया जाता है तो हर एक की ज़बान पर यही होता है कि अरे! आप कैसी बात कर रहे हैं? भला कोई अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर करने भी देता है? जिस से कुछ कहो या टोको वह उलटा ही जवाब देता है। अरे नहीं! यह काम नहीं हो सकता क्योंकि इस में मुश्किलें व रूकावटें बहुत ज़्यादा हैं।

यह है वह जवाब जो ज़्यादातर लोग अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर का नाम सुनकर देते हैं।

जबकि सच्चाई कुछ और है। सिर्फ़ अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर ही एक ऐसा क़ानून है जिसको चाहे कोई भी और जैसा भी ज़माना हो, ख़त्म नहीं किया जा सकता। किसी के अंदर भी इतनी ताक़त नहीं है कि इस दीनी फ़ार्मूले को

उठाकर एक तरफ़ रख दे। हाँ! अगर अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर से सिर्फ़ ज़बान से टोकने, परेशानियाँ पैदा करने और फिर ज़ोर-ज़बरदस्ती करने का मतलब लिया जाए तो फिर तो इस रास्ते में रूकावटें ज़रूर आएंगी।

जैसा कि पहले भी कहा गया कि अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर की बुनियाद नेकी व अच्छाई पर रखी गई है। अगर कोई इंसान दूसरों के लिए किसी भी तरह की कोई क़ुरबानी दे रहा हो, दूसरों की मदद कर रहा हो, चाहता हो कि वह अच्छा बन जाए और दूसरों के साथ भी अच्छाई कर रहा हो तो क्या ऐसा हो सकता है कि एक दूसरा इंसान आगे बढ़कर न तो उसे ही अच्छा बनने दे और न उसे दूसरों के साथ अच्छाईयाँ करने दे? क्या ऐसा हो सकता है कि लोगों से कह दिया जाए कि न तो अच्छे बनो और न ही दूसरों के साथ अच्छाईयाँ करो?

बहरहाल यह है अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर के नाम से इस्लाम का एक बहुत मुक़द्दस (पवित्र) क़ानून और यह है इस दीनी क़ानून के साथ हमारा बर्ताव जिसकी वजह से आज हालत यह हो गई है कि अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर न सिर्फ़ हमारी सोसाइटी से ख़त्म हो गया है बल्कि अब तो हम इसके बारे में सोचते भी नहीं हैं। साथ ही हम ने इसकी शक्ल ही बदल कर रख दी है।

क्या कभी किसी ने सोचा है कि आख़िर इस्लामी इतिहास में क्यों हर फ़िरक़े में बड़ी-बड़ी हस्तियाँ (Personalities) पैदा हुई हैं? जैसे बड़े-बड़े लिखने वाले, बड़े-बड़े स्पीच देने वाले, बड़े-बड़े शायर, बड़े-बड़े उलमा, बड़े-बड़े साइंटिस्ट, बड़े-बड़े मैथ्मीटीशियंस, बड़े-बड़े इतिहासकार, बड़े-बड़े पॉलिटीशियंस, बड़े-बड़े बिज़नेसमेन और बड़े-बड़े आर्टिस्ट्स लेकिन जहाँ तक अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर और समाज सुधारकों (Social Reformists) की बात है तो यह मैदान ख़ाली है। वैसे ऐसा भी नहीं है कि हमारे यहाँ ऐसे लोग पैदा न हुए हों, हुए हैं लेकिन जितने होने चाहिए थे उतने नहीं हुए। जबकि हमारे मज़हब इस्लाम में अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर जैसा ज़बरदस्त क़ानून भी मौजूद था और है। यह तो ऐसा क़ानून है कि हमारे बीच समाज सुधारकों की एक बहुत बड़ी तादाद होना चाहिए थी।

वैसे हमें यह उम्मीद भी नहीं रखना चाहिए कि हमारे यहाँ जितने शायर, उलमा, साइंटिस्ट, मैथ्मीटीशियंस, इतिहासकार, पॉलिटीशियंस, और आर्टिस्ट पैदा हुए हैं उतने ही समाज सुधारक भी होने चाहिएं। ''समाज सुधारक'' होने के लिए बहुत गहरी नज़र और बहुत बड़ी सोच होने के साथ-साथ दूसरों के लिए क़ुरबानी देने का जज़्बा भी बहुत ज़रूरी है जिसकी वजह से ऐसे लोग कम ही पैदा हो पाते हैं लेकिन फिर भी हमारे यहाँ जितने समाज सुधारक होने चाहिए थे उतने नहीं हैं। लेकिन क्यों? इसकी वजह क्या है? यह एक ऐसा सवाल है जिसका जवाब अभी इस किताब में तो बिल्कुल नहीं दिया जा सकता। इसके लिए फिर किसी वक़्त अलग से बात करना होगी।

हमारे यहाँ समाज सुधारक इतने कम रहे हैं और समाज सुधार की बातें हम ने इतनी कम सुनी हैं कि हमें इस बात का एहसास ही नहीं हो पाता कि यह भी कोई बड़ा काम है और बड़े ही लोग इस काम को कर पाते हैं। अगर हम से कहा जाए कि हज़रत अली[अ०] या इमाम हुसैन[अ०] बहुत बड़े इबादत करने वाले थे या बहुत बड़े आलिम थे तो हम में से हर एक इस बात का मतलब आसानी से समझ जाता है और इसे इमाम की एक शान समझता है लेकिन अगर कहा जाए कि वह समाज सुधारक भी थे तो हमारी समझ में कुछ नहीं आता और न ही हम इस चीज़ को अहमियत (महत्व) देते हैं। जबकि यह इतनी ख़ास बात है कि जो कुछ काम इमामों ने किए हैं यह उन में सब से ऊपर है यानी इमामों के कामों में भी अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर का नम्बर सबसे पहले आता है। ख़ुद उन सब ने भी अपने लिए इसी नाम और इसी काम को सब से ज़्याद पसंद किया है।

हमारे पहले इमाम हज़रत अली[अ०] नहजुल बलाग़ा के ख़ुतबा/129 में फ़रमाते हैंः

> ऐ अल्लाह! तू जानता है कि न मुझे हुकूमत का शौक़ है और न सरदारी का, न दौलत की लालच है और दुनिया की चाहत। मैं तो सिर्फ़ इस्लाह (Reform) करना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि तेरे दीन की निशानियों को उनकी जगह पर

> वापस ले आऊँ और तेरी ज़मीन पर सुधार ले आऊँ ताकि जिन पर ज़ुल्म हुआ है उन्हें कुछ सूकून मिल जाए।

इसी तरह इमाम हुसैन[अ०] ने भी मदीने से निकलने वक़्त अपने भाई मोहम्मद बिन हनफ़िया को जो वसिय्यत की थी उस में यह लिखा थाः

> मैं दुनिया की लालच में नहीं निकल रहा हूँ, मैं फ़साद (बुराईयाँ) फैलाने वाला और ज़ुल्म करने वाला नहीं हूँ। मैं और मेरा मिशन समाज सुधार है। मैं समाज सुधार के लिए निकल रहा हूँ।[8]

1- फ़ुरूए काफ़ी, जि. 5, पेज. 56
2- उसूले काफ़ी, जि. 2, पेज. 78
3- फ़ुरूए काफ़ी, जि. 3, पेज. 55
4- अल-निहाया, पेज. 299 व 300
5- नहजुल बलाग़ा, हिकमत- 73
6- सूरए हुजरात/12
7- बिहारूल अनवार, जि. 75, पेज. 246
8- मक़तल अल-ख़्वारज़्मी, जि. 1, पेज. 188